

नई कविता में सौन्दर्य-बोध
तथा
अन्य निबन्ध

नयी कविता मे सौन्दर्य-बोध तथा अन्य निबन्ध

डॉ० गायत्री चव्हा, एम०ए०, पी०एच०डी०

हिन्दा विमान

राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

रोशन लाल जैन एण्ड सन्स

बजार बाजार
जयपुर

| बीरही बा राला
जयपुर

प्रकाशक
श्रीमानलाल जी एण्ड सन्स
जयपुर व भारत

मूल्य चार रुपया

प्रथम संस्करण
१९९२

मुद्र
जयपुर निर्माण जयपुर

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक मेरे समय-समय पर मिले निबंधों का सङ्कलन है। अधिकांश निबंध साहित्य और समाज की सुगीम प्रवृत्तियों से संबंधित हैं। अभी हाल में हुए भाषा आन्दोलन पर भी दो निबंध इसमें संकलित हैं। साहित्य के विद्यार्थी के सामान्य ज्ञान के लिये हिन्दी नविका के विराज काल दीर्घक ने निबंध में प्राचीन युग से आरंभ तक के काव्य साहित्य की सामान्य विशेषतायाँ और प्रवृत्तियों का सूत्रन किन्तु रोचक बर्णन किया गया है। पाठकों को निबंधों के प्रस्तुतीकरण में मौलिकता और कुछ नवीनता मिलनी ऐसा मेरा विश्वास है। प्रत्येक विषय में मेरी अपनी कुछ माध्यमार्थों और सिद्धान्त रहे हैं, सम्भव है पाठक-गण उनसे सहमत न हों किन्तु मैंने जिस प्रकार सोचा वही आपके सामने प्रस्तुत है।

इन निबंधों में से कुछ निबंध आशागवाली के अमरपुर केन्द्र से प्रकाशित हो चुके हैं। आशागवाली के अधिकारियों ने इन्हें प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की इसके लिये मैं उनकी धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

अमरपुर,

कुछ पूर्णिमा १९६२

गद्योद्देश

क्रम

- १ काव्य का आधार एवं प्रयोजन
- १४ 'प्रापुनिक हिन्दी काव्य में समाज'
- २७ नारी-मुनसी की दृष्टि में
- ३८ 'साकेत' की प्रसिद्धि
- ४३ प्रापुनिक हिन्दी काव्यों में नारी का स्वभाव
- ४६ : 'भीष्म' महाकाव्य की भीष्म
- ५५ महादेवी वर्मा
- ६१ 'विजयलक्ष्मी' की मर्म कथा
- ६६ सहानुभूति की पात्र-मांडवी
- ७४ : भारतेंदु की 'जातीय संघर्ष' योजना
- ८३ 'शेखर कविता' की कथा
- ९० 'भारती और भारतीयता के धर्म धारक
- ९६ 'नयी कविता' में सौंदर्य-बोध
- १०५ बिहारी लालों में हिन्दी
- ११२ बिहारी-लेखि
- १२० : धारवादी कविता पर रसोक्त का प्रभाव
- १२३ : राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति हमारा व्यवहार
- १३४ हिन्दी-कविता के विविध नाम

काव्य का आधार एव प्रयोजन

काव्य मानव हृदय के गर्भीर बिचारों और सुगम अनुभवों की अभिव्यक्ति है। सामाजिक शांति हानि के माने मनुष्य जीवन और मृत्यु के बिना अनुभवों और प्रभावों का संवेद्य धारण धारण करने में करता रहता है। काव्यकार में उनकी अभिव्यक्ति ही काव्य का आधार बनती है। सुगम और सुगम प्रेम और शृंगार और बिबाह के आशयों का मनुष्य का भाव सक्ति करने धारण करने में गया है। मानव धर्म धर्म के बिना मानवों द्वारा उन्हें दूसरों पर प्रेम करने ही मानव और मनुष्य धर्म बनता है। मानव धर्म की धर्मों बिना और मनुष्य हृदय का अभिव्यक्ति के प्रमाण है। मानव के आदि काव्य में जब कि मनुष्य को मानव और शांति का कारण नहीं मान हृदय का वह धर्म हृदय मान और बिचारों का नहीं का धर्म म अभिव्यक्ति करता था। प्रकृति के बिना आश्चर्य हृदय की दृष्टि वह होने का वह उल्लास था। सुगम का उल्लास प्रभाव और मनुष्य की मनुष्य कोशिशों के बिना बिना बिना कर देती थी। मानवों की मनुष्य और बिना की मनुष्य उमे प्रेम और मनुष्य के बिना देती थी। इन बिना भाव का धर्म मनुष्य मनुष्यों द्वारा दूसरों का मनुष्य दत्ता था। मनुष्य मनुष्य शांति द्वारा मानवों की प्रकृति करने म धर्म होने के कारण हम कर मानव मनुष्य और मनुष्य धर्म धर्म धर्म धर्म प्रकृति बन बना है। मानव यह कि मानव भाव की अभिव्यक्ति मानव मानव का प्राकृतिक मनुष्य है। अभिव्यक्ति की मानव मनुष्य प्रकृति की धर्म धर्म के बिना मनुष्य अभिव्यक्ति की है -

ज्ञान को दिया तथा विश्व संग्रार में माया
मंदर प्रतिष्ठापित की मानव सुख कल्याणों को जानी ।

काव्य का आधार एवं प्रयोजन

काव्य मानव हृदय के गंभीर विचारों और सुन्दर अनुभवों की अभिव्यक्ति है। सामाजिक प्रणाली होने व माने मनुष्य जीवन और जगत् के विभिन्न अनुभवों और प्रभावों का संवेद्य करने वाला तत्त्व म बनता रहता है। सामान्य में उसकी अभिव्यक्ति ही काव्य का आधार बनती है। मनुष्य और दुःख प्रेम और श्रद्धा हृदय और विषाद व आश्चर्य को मनुष्य की कोई शक्ति अपने अन्तरगत म समाहित नहीं कर पाती। मानव अभिव्यक्ति के विविध माध्यामों द्वारा उन्हें दूसरों पर प्रकट करने की सामर्थ्य और सन्तोष अनुभव करना है। मानव प्रकृति की सुविधाओं और सज्जन मनुष्य हृदय की अभिव्यक्ति के प्रतिफल हैं। सम्पन्न के प्रति काम में जब कि मनुष्य को माया और बाणी का वरदान नहीं प्राप्त हुआ था वह अपने हृदय में माया और विचारों का उन्हीं के माध्यम म अभिव्यक्त करता था। प्रकृति के विभिन्न आश्चर्य हृदय को बेगार बद्ध होने में बाध उत्पन्न था। सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश और चन्द्रमा की मृदुल चारदी उन्हीं विषय विमृष्ट कर देती थी। बादलों की मृदुलता और बिजली की क्षमक उम्र मय और शक्ति मय देती थी। इन विविध भावों का आभास मनुष्य मनुष्यों द्वारा दूसरों का बना देता था। मनुष्य मनुष्यों द्वारा भावों को प्रकट करने में असमर्थ होने व वारदात होने पर अपना सन्तोष और शोक अपनी सुधा या घृण्ट प्रकट कर देता है। तात्पर्य यह कि अपने भावों की अभिव्यक्ति मानव मात्र का प्राकृतिक गुण है। अभिव्यक्ति व मानव मनुष्य प्रकृति की वरिष्ठ संभव में निरर्थाक मनुष्य अभिव्यक्तता की है -

ज्ञान का ज्ञान भना विषय बीजकार में मान्य
मगर अभिव्यक्ति की मानव गुण मनुष्य नहीं जानी।

मनुष्य की यही प्रकृति काव्य का मूल आधार है। 'एकान्तं बहुव्याम्' की भावना मनुष्य को काव्य मृष्टि व मिव प्रेरित करती है।

काव्य के उद्गम की उक्त मायता में यह संभाव्य होना है कि यदि काव्य मानव हृदय के भावां और विचारों की अभिव्यक्ति मात्र है तो प्रादेश विभागीय और धर्मधर्म व्यक्ति को यदि और बाह्यमरार होना चाहिये किन्तु बिना यह हमारे विपरीत दिखाई देता है। जयन् के रूप के रूप में प्रत्यक्ष मनुष्य का प्रभावित करने है और उनकी अभिव्यक्ति की दशा में प्रत्यक्ष में विद्यमान रहती है किन्तु हम कहते हैं कि कुछ दिनें कुछ व्यक्ति ही यदि वह को सुनिश्चित कर पाते हैं। निपाद के बागों में बीच पक्षी का मगने और बीचों बीच गहने बास्तीरि के धनिरिपन और किसी में भी दगा हागा तब निपाद में देगा हागा किन्तु बास्तीरि के मृग में ही -

या निपाद प्रणिहा स्वयमम गारवनीममा ।
यन् बीच मिथुनादेकमवधी काममाहिनम् ॥

की काव्यमयी उक्ति उद्गीर्ण हुई। नव्य यह है कि भाव और विचार प्रत्यक्ष मानव में विद्यमान होने हुए भी धनुषी की तीव्रता महदपता और मकरमा मकरा समान भावा में प्राण नहीं होनी और न भावा के वेग का उमी र्ण में दूसरा पर प्रवृत्त करने की कला मकरों वाली है। कुछ प्रणिजातीय व्यक्ति ही करने धनुषी भावा का समको वाली में प्रवृत्त करने में समर्थ होते हैं। भावा पर मकरा समान प्रवृत्तार होने पर भी यदि या कलाकार हो उन्हें हम प्रकार उत्प्रेषित कर पाते हैं कि वे न काल वधि प्राप्त का सुनिश्चित है किन्तु मानव भाव के हृदय का समान रूप में धारुणित करने हैं। यदि और सामान्य मनुष्य में नहीं धनिर है। विचार गाम्भीर्य धनुषी की तीव्रता और अभिव्यक्ति की कला काव्य के आवरण धनिर है। यदि कोई मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति द्वारा करने पावता का उद्गीर्ण भावा में धनुषी

कर पाता है तब तो वह स्वयं प्रभावित है तो वही प्रकृत कवि है और नहीं सच्ची कविता है ।^१

यद्यपि भावों की अभिव्यक्ति ही काव्य का आधार है किन्तु सब प्रकार का बूढ़ा कचरा काव्य की सीमा में नहीं आता, उसके कुछ निर्धारित नियम हैं जिसके अनुसार अभिव्यक्ति होने पर ही सहृदय लोग उस काव्य की कोटि में परिगणित करते हैं। ये नियम-निर्धारण ही काव्य के सतत बहसते हैं। आधारों बिनामात्र में काव्य के सतत प्रतिपादित करने हुए समासजना को काव्य का प्रतिपादक युक्त माना है^२ ? उनका अनुसार कोई भी ऐसी समझी उक्ति काव्य का रूप धारण कर सकती है जिसमें भाव हृदय को आनन्दित करने की क्षमता हो। 'रस मंतापर' का रसिकता का अंगभूत में भी समझीय भाव का प्रतिपादन करने वाले भाव को काव्य की कोटि में गिरा है। काव्यमय होने के लिए अभिव्यक्ति का समझीय होना आवश्यक है। जिस भावों से हृदय में आनन्द अनुभव हो वही काव्य है। कुछ विद्वानों ने काव्य में अन्तर और भाषा दोनों पर अधिक बल दिया है किन्तु अन्तर और भाषा ही काव्य के अन्तर हो सकते हैं। भाषा नहीं। अनुभूति की मर्याद में काव्य में समझीयता एक आधार है उसे अन्तरों और भाषा दोनों की उन्नी आवश्यकता नहीं होती। कवि के शरीर में —

का भाषा का समझीय भाव चाहिए।

काव्य का भाव काव्यी का त करे समझीय ॥

साधारण से साधारण भाषा यदि वह हृदय की गहराई से उद्भूत है तो भाव का आधार बनने के लिए पर्याप्त है उसे काव्य सिद्धी

1 All are poet if they have the power so to make the words to an entire mental experience that it is as if it is aroused in their readers. By virtue of that power alone they are 'true poet' and their word 'true poetry'

[say on Pure Poetry by J. Middleton Murry]

२ काव्य काव्य काव्य—साहित्यीय

मापन की आवश्यकता नहीं। जबकि रीति न यही बात वास्तविक भाषा
में हम प्रसार करती है -

तुम बहन कर मारा जनमन में मेरे बिचार
बाली मेरी क्या तुम्हें चाहिए धर्मद्वार।

पादपात्र बिडाना में वास्तव के लिए भाषणा तत्त्व बहना तत्त्व
बुद्धि तत्त्व और सीनी न बार तत्त्वों की आवश्यकता माना है। यद्यपि य
बात तत्त्व वास्तव में आवश्यकता उत्पन्न है किन्तु जब इनमें से किसी
एक की प्रधानता वास्तव में हो जाती है तो बाप उत्पन्न हो जात
है। वास्तव में अनुभूति और अभिव्यक्ति का समान महत्व है। अनुभूति
में भाव और ब्रह्म तथा अभिव्यक्ति में जैसी और कल्पना का समावेश
हो जाता है। जिसके द्वारा ही अनुभूति जितनी ही तीव्र होगी उमारी
अभिव्यक्ति उतनी ही आह्लादक उत्पन्न और सुख होगी।

आपत्ति समाधानों में कई बिडाने वास्तव में जब हृदय की अनु
भूति आपत्ति भाषा का कोई अर्थ नहीं देते। डॉ० देवराज के मन में
गार्हस्थ्य मात्र किसी भीनगी वस्तु की अभिव्यक्ति नहीं होना वास्तव में
के आश्रय ही वास्तव की उन्नति के कारण है। वे कहते हैं कि यदि
गार्हस्थ्य मात्र मेरे भीनगी आपत्ति में केवल आपत्ति समाधानों की
अभिव्यक्ति है तो यह स्पष्ट है कि मुझे गार्हस्थ्य वृत्ति के लिए अपने आप
हम अपने आपों को के भी-गुणों तथा मेरे समार से संतुष्ट होने की,
उमम अभिव्यक्ति देने की बातें उत्पन्न नहीं।^१

यह टीका है कि जब वास्तव में आपत्ति उत्पन्न है जो कुछ
अनुभव करता है उन्हीं को आपत्ति उत्पन्न वास्तव की वृद्धि करता है।
हम वास्तव की अभिव्यक्ति अभिव्यक्ति रूप से जब को प्रभावित करती
है किन्तु वास्तव वास्तव आपत्ति या वास्तव परीक्षाओं वास्तव का आपत्ति
कभी नहीं बन सकती। जब वास्तव रूप से प्रभावित होकर भी अपने

हृदय का रस उसमें मिमाता है। संसार के विविध रूप उसके हृदय में एक महीन बिन्दु की रचना कर देते हैं। वह अपनी कल्पना मृष्टि के सहारे संसार की छोटी से छोटी वस्तु और बड़ी से बड़ी समस्या की हस्ताममक बन देगता है। वह संसार की वयार्थता को अपनी आत्मा के रस से मिश्रित कर ऐसा बना देता है कि न केवल उसकी आत्मा धनितु बिन्दु की आत्मा उसमें सीन होकर आनन्द का अनुभव करती है। प्रकृति के जड़ पदार्थ कवि की दृष्टि में पहुँचकर एक धर्मीक सृष्टि की रचना कर देते हैं। अन्तर में प्रियतम के बर्णन होते हैं -

पत्थर के टुकड़ों में भी तो मिसला प्रियतम का आभास।

उठा हृदय पर रंग नेता हूँ करता रहे जयत् उपहाम ॥

- प्रभाव

कवि की सूक्ष्म दृष्टि शून्य की बूँदों में समुद्र की असक पाती है। उसे आकाश में भिममिसाले ठारे मोल सकेत करते प्रतीत होते हैं। विष्णु का अस्मा चमकना और छिपना धार्मिकीनी के लेख-सा प्रतीत होता है। तात्पर्य यह कि बाह्य प्रकृति कवि के अन्तरगत की महदयना और सरवता में अनुस्यूत होकर एक निरामी दुनिया बना लेती है। और वही धर्मिभक्त होकर काम का आचार बनती है। यद्यपि यह कहना कि काम में बाह्य आकृतियों का ही महत्व है - हृदय और अनुभूतियों का नहीं - काम को विज्ञान और तार्किक दृष्टि से तोनना है। केवल बाह्य मृष्टि का बर्णन करने वाला व्यक्ति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तटस्थ हो जाता है कवि नहीं। कवि के लिये अन्तर और बाह्य (आर और बाह्य) दोनों के सम्बन्ध की साधना आवश्यक है। काली सम्बन्धना रचना बुद्धि को धारणित नहीं करती और बोरे पदार्थ बर्णन में हृदय का योगदान प्रगल्भा है। यही शान्तिप्रिय विद्वेगी के हृदयों में वेरन बाह्य दृष्टि में दगधर जगत् के निर्जीव चीजों में महान् जो कुछ गंवार का दिया पाया है उगते मनोविनो तो धरत्य हो जाता है। विष्णु हृदय

की पहली नहीं घुमती । बाह्य संगार को देखकर उसपर कवित्व का निर्मल रंग बढ़ाने वाला ही प्रकृत कवि है" ।^१

वस्तु वचन विचारों और स्तुभ अनुभवों को जम देता है और अन्तर्बगत् भावों और अनुभूतियों की सूक्ष्म उद्भासना करता है । इन दोनों के यथार्थ समन्वय द्वारा कवि की कोई सृष्टि काव्य का रूप धारण करती है । काव्य के लिये दोनों का समान महत्व है । जिस युग में इन दोनों में से किसी एक की प्रधानता हो जाती है वह काव्य अपने वास्तविक स्वरूप को छोड़ देता है । ऐतिहासिक कवियों ने आध्यात्मिकताओं की निम्न वृत्तियों को सृष्ट करने के लिये भाव अनुभावों के विविध विविध भाव स्वन और रूप ढाँचे किये । उन्होंने यथार्थ जगत् की ओर ध्यान नहीं दिया कमस्वरूप उनकी कविता कुछ इन्द्रिय मोलुप बिलासी मोलों का ही मनोरंजन कर सकी साधारण जनता को उसमें कोई आकर्षण न मिला । इसी प्रकार द्वितीय युग के काव्य में इतिवृत्तात्मकता का आधिक्य हुआ तो रहस्यवाद-आभावाद के रूप में उसका विरोध प्रारंभ हुआ । आभावाद ने स्तुभ के विपरीत सूक्ष्म अतिस्तुभ भावों की अभिव्यक्ति हुई । इसमें अन्तः प्रवृत्तियों का प्रकाशन मात्र कवियों का लक्ष्य रहा । जिसके विरोधस्वरूप काव्य में प्रगतिवाद ने जन्म लिया जिसका अधिकार भाग रोटी और मूख की समस्या में संलग्न हुआ है । इस प्रकार जब जब काव्य में किसी एक पक्ष का प्राबल्य हुआ तुरन्त उसकी प्रतिध्वनि में दूसरे प्रकार की रचनाएँ प्रारम्भ हो गई ।

अतः बाह्यवचन का आविष्टन मात्र काव्य की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त नहीं है । काव्य का प्रधान विषय भाव है उसमें ज्ञान की अवेष्टा मात्र की प्रधानता रहती है । विज्ञान वर्णन गणित आदि वास्तव घुड़ ज्ञान के विषय हैं, और काव्य के विषय भाव हैं । काव्य अपने घुड़ रूप में मानव हृदय की उपज है उसमें जीवन और जगत् की अनुभूतियों की

मानव व्यंजना की जाती है अतः उसका आधार न बाह्यजगत् का आवेष्टन है न प्राकृत तथा राजनैतिक व्यवस्था और न प्रायः महोदय के स्वप्न तथा मनोविज्ञान पर आधारित मिथ्यात । यह तो केवल मानुषी पर आधारित है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में मनुष्य जाति के बीच कविता हृदय के भावों का नेचर ही उठी है । प्रेम उल्लाह आश्चर्य कस्तुरा आदि की व्यंजना के लिये ही आदि कवियों ने अपना स्तम्भ कण्ठ सोला का तब से आज तक संसार की प्रत्येक कविता की तरह से आवाजमूर्ति आत्मा की तरह बसनी बसी आली है । काव्य में भाव के आत्मजन रूप में ही जगत् की किसी वस्तु का प्रह्लाद हो सकता है और किसी रूप में नहीं ।^१

काव्य का प्रयोजन - मानुषी पर आधारित होने के कारण काव्य का चरम सत्य मनुष्य की आत्मिक प्रकृतियों का विस्तार और मनोवृत्तियों का परिचयन करना है । मानव हृदय स्वयं एक रहस्य है । अतएव मनुष्य के हृदय में अपने समय और परिस्थिति के अनुसार विविध भावों का संघम होना रहता है । एक ही क्षण में अलग अलग भाव मनुष्यों के भाव परस्पर मिश्रित रहते हैं । काव्य में ऐसी विविध भावों की एक विविध विस्तार प्रदर्शनी ही उपस्थित रहती है । एकद्वारा मनुष्य एक दूसरे के हृदय और विचारों में प्रवेश होता है । काव्य वह माध्यम है जिससे विभिन्न-विभिन्न मानव हृदयों में आस्पर्श सम्बन्ध स्थापित होता है- इस प्रकार काव्य का परम उद्देश्य सर्व मनुष्यों को आत्ममूर्त और आत्ममूर्त को सर्व मनुष्य बनाना है । काव्य द्वारा मनुष्य न केवल मनुष्य हृदय का परिचय प्राप्त करता है अतः मनुष्य के भाव और भावना सम्बन्ध जाड़ होता है । शुक्लजी ने काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है 'कविता वह माध्यम है जिसके द्वारा दोष गृही के भाव मनुष्य के आत्मिक सम्बन्ध की रक्षा और उसका निर्वाह होता है । जीवन और

कला स्वयं साध्य है उसका कोई प्रयोजन नहीं है। जिस प्रकार हम मनुष्य की सुन्दरता देखकर मोहित होते हैं चन्द्रमा की तीव्रता और रम्यता पर मुग्ध होते हैं, ठीक उसी प्रकार काव्य का सौन्दर्य स्वयं साध्य है उससे किसी मानवीय उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। इस विचार के प्रमुख अनुयायी श्री इलाय्य बोधी का कथन है कि 'कला का मूल ध्यान है, ध्यान प्रयोजनमत्त है। सुन्दर कूल देखने से हमें ध्यान प्राप्त होता है उससे हमारा कोई स्वार्थ या प्रयोजन छिन्न नहीं होता। विश्व की इस धनता कृति की तरह कला भी ध्यान का ही प्रकाश है उसके भीतर नीति तत्त्व प्रपञ्च प्रिया का स्थान नहीं। उसके अर्थ की कला के भीतर किसी तत्त्व की खोज करना सौन्दर्य देखी के मन्दिर को कलुषित करना है।' कुछ पश्चिमी आलोचकों का भी यही मत है। मास्कर वाइज़ का कहना है कि सौन्दर्य की प्रतिमा कला स्वयं ध्यानवादिनी होती है और कला में यही ध्यान प्रोत्ति है और कुछ नहीं। कुछ लोग सुलसीला की 'स्वाप्त सुखात् सुलसी रघुनाथ गाथा' की उक्ति के आधार पर कला का प्रयोजन जनजीवन और समाज से संबंधित न मानकर केवल स्वाप्त सुखात् मानते हैं। उनके विचार कलाकार के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह काव्य द्वारा जीवन में विविध पहलुओं पर प्रकाश डाले और बैठकर यह विचार करे कि किस प्रकार उसकी कृति द्वारा अधिकाधिक मानवहित का सम्पादन हो। उपर्युक्त मत के ठीक विपरीत काव्य को साधन रूप में मानने वाले विद्वानों का मत है। उनके अनुसार काव्य का उद्देश्य मानवजीवन से है यद्यपि उसमें प्रयोजन का होना आवश्यक है। मनुष्य कोई कार्य बिना उद्देश्य के नहीं करता फिर काव्य जैसी उच्च वस्तु का उद्देश्य क्या निष्प्रयोजन हो सकता है? काव्य हमें धान्य प्रदान करता है, हमारा मनोरंजन करता है किन्तु इसके अतिरिक्त काव्य का उद्देश्य और अधिक महान् और महत्त्व पूर्ण है। काव्य मानव समाज की वस्तु है। मनुष्य की अनुभूति और विचारधर्मियाँ ही उसमें अभिव्यक्ति पाती हैं। अतः मानव

साधन में परे काव्य का कोई अस्तित्व नहीं है। साधन की मृटि उद्देश्यहीन नहीं हो सकती। घट काव्य का अनुपम समाज के लिए उपयोगी होना आवश्यक है। गुणाक्षी ने 'कला कला के लिए' मित्राण का ज्ञान करने हुए कहा है -

साधन हैं जो कला के धर्म ही

स्वाधिन करके कला को धर्म ही।

श्री प्रमोद ने कला का प्रयाजन बताने हुए कहा है "साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और सुन्दर बनाना है। दूसरे शब्दों में इसकी वास्तविकता संसार ही है। यही उसका मुख्य उद्देश्य है"। श्री गुणाक्षर सा० राम सुन्दर सा० द्वारा प्रकाशित 'विश्वी' आदि विद्वान् आलोचक इसी मत के हैं। वे लोग मानते हैं कि काव्य साधन समाज की वस्तु है। अनुपम की अनुपमता और विचार जीवन ही उसके अस्तित्व की धार है। अतः साधनहीन में परे काव्य का कोई अस्तित्व नहीं। प्रसिद्ध आलोचक मैक्स जॉन्स ने कविता का जीवन की धारणा बनाया है। इसमें के अनुसार Poetry is made out of life, belongs to life, exists for life.

निस्सन्देह कला अनुपम की सौन्दर्य वृत्ति को पुष्ट करके उन आनन्द प्रदान करती है किन्तु आनन्द स्वयं प्रयोजन रहित नहीं होना। सुन्दर के प्रति आकर्षण अनुपम की स्वाभाविक वृत्ति है। अनुपम ही वस्तु हम देखते हैं। पशु पक्षी तक सौन्दर्य प्रीति होते हैं। भैंसों के मधुर रस पर मधुर हर्ष बिना हो जाने लगता है। मीठा की ध्वनि पर कुरंग मुपमुप बिना बैठता है। बांगुरी की आवाज में कलरुहित धरें फिर हिमात लगता है। बगल की मुद्रा में कोकिल बूबने लगती है। अतः सौन्दर्यपूर्ण वस्तुओं में अनुपम का स्वाभाविक होना अस्वाभाविक नहीं किन्तु हम अन्धकार का जीवन में एक विशिष्ट महत्त्व है। यह प्रयोजन रहित नहीं। हृदय का आनन्द अनुपम के स्वाभाविक का धर्म और जन्म बनाता है। जीवन में गुण प्राप्त न करने जान या गुणी न रहने का

तब उसका मूल्य कम हो जाता है। ऐसे काव्य में मानवता का व्यापक स्वरूप समाहित नहीं हो पाता अतः इसकी जड़ें भी बहुत गहरी नहीं होती।

काव्य और जीवन का घनिष्ठ संबंध है। सतार में रहकर कवि जो कुछ देखता सुनता और अनुभव करता है वही कल्पना में आकर उसे काव्य सृष्टि के भिन्ने प्रेरित करते हैं। अतः कोई काव्य जीवन निरपेक्ष हो भी कैसे सकता है? 'कला और जीवन का सबसे अन्तर और बाह्य का है। जो कुछ भी बाह्य है वह अन्तर में समा सकता है और जो अन्तर है वह बाह्य के माध्यम से ही निर्मित हुआ है। हमारे अन्तर्जगत् की सभी भावनाएँ इसी बाह्य जगत् की प्रेरणा से बनी हैं। इस प्रकार कला और जीवन में किसी प्रकार के विच्छेद की संभावना नहीं रह जाती।" जब कलाकार जीवन की अनुभूतियों को हृदय रख से सींचकर काव्य का स्वरूप प्रदान करता है तो वह निश्चेष्ट नहीं हो सकता है। उसका प्रयोजन है आत्मानुभूति का विस्तार जिससे मानव जीवन सरल और मानवमय बनता है।

ध्याति प्रायः विद्वद्भिर्हीन और उच्च स्वभाव वाले देखे जाये हैं । इस दृष्टि से कुछ भगवद् में भी कोई न कोई प्रयोजन व्यवस्य अन्तर्निहित रहता है । 'कमा कमा के लिये' के सिद्धांत की निवेचना करते हुए डॉ० इयान मुन्डर दास ने लिखा है "यदि कमाओं का काम केवल भगवद् देना है तो भी वे उच्च असाधारण भगवद् को उत्पन्न करके हमारी भावनाओं को व्यापारित और संस्कृत कर देती हैं । और यदि वे इस प्रकार हमारी भावनाओं को कुछ और संस्कृत बनाती तथा हमारी वक्ष्यना शक्ति को तीव्र करती हैं तो इन उन्हें उपादेयता युक्त न बल्कि और क्या कहेंगे ?" इसी प्रकार के विचार की प्रवृत्ति के हैं । वे काम्य को निर्वह्य और स्वयं साध्य नहीं मानते । उनका मत है कि साहिर्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है और उसका उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता बढ़ाना है ।^१ काम्य को कुछ सौन्दर्य की दृष्टि से देखने वालों से उनका कहना है कि निःसन्देह कमा का उद्देश्य सौन्दर्य वृत्ति की पुष्टि करना है और वह हमारे आध्यात्मिक भगवद् की कुर्बी है पर ऐसा कोई अधिकृत मानसिक तथा आध्यात्मिक भगवद् नहीं जो अपनी उपयोगिता का पहलू न रखता हो । भगवद् स्वतः एक उपयोगिता युक्त वस्तु है ।^२

इस दृष्टिकोण से कमा के सौन्दर्य स्वरूप में कोई बाधा नहीं पड़ती । अन्तर केवल इतना ही है कि एक ओर जीवन निरपेक्ष सौन्दर्य है और दूसरी ओर जीवन सापेक्ष ।

जीवन सापेक्षता में कमा का सौन्दर्य अधिक स्वाधीन और उपयोगी हो सकता है । जीवन से रहित केवल सौन्दर्य मुन्डर दास के समान है जो आकर्षण की अपेक्षा अनाकह अधिक है । जब काम्य अपना मूल आधार मानव के हृदय और भावों को न बनाकर कोरी वक्ष्यना को बनाता है

१ साहित्यालोचन

२ कुछ विचार

१ ॥

तब उसका मूल्य कम हो जाता है। ऐसे काव्य में मानवता का व्यापक स्वरूप समाहित नहीं हो पाता अतः इसकी बड़ों भी बहुत गहरी नहीं होती।

काव्य और जीवन का अनिष्ट संबंध है। संसार में रहकर कवि जो कुछ देखता सुनता और अनुभव करता है नहीं कल्पना में घाबर उसे काव्य सृष्टि के सिमे प्रेरित करते हैं। अतः कोई काव्य जीवन निरपेक्ष हो भी कैसे सकता है? कला और जीवन का संबंध अन्तर और बाह्य का है। जो कुछ भी बाह्य है वह अन्तर में समा सकता है और जो अन्तर है वह बाह्य के माध्यम से ही निमित्त हुआ है। हमारे अन्तर्जगत् की सभी भावनाएँ इसी बाह्य जगत् की प्रेरणा से बनी हैं। इस प्रकार कला और जीवन में किसी प्रकार के विच्छेद की संभावना नहीं रह जाती।^{११} जब कलाकार जीवन की अनुभूतियों को हृदय रख से सींचकर काव्य का स्वरूप प्रदान करता है तो वह निरक्षर नहीं हो सकता है। उसका प्रयोजन है आत्मानुभूति का विस्तार जिससे मानव जीवन सरल और मानवमय बनता है।

‘आधुनिक हिन्दी काव्य में समाज’

साहित्य में सामाजिक जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख विशेषता है। नू तो साहित्य और समाज का पारस्परिक संबंध सास्वत है साहित्य समाज को प्रेरणा व आनन्द प्रदान करता है और समाज विभिन्न परिस्थितियों से साहित्य को प्रभावित करता है परन्तु साहित्य में किसी युग विशेष की सम्पूर्ण मनोवृत्तियाँ इतने स्पष्ट रूप में जितनी कि हम आधुनिक हिन्दी काव्य में पाते हैं मिलना बड़ा कठिन है। हिन्दी के बीरयाचा-काल भक्तिकाल तथा ऐतिहासिक काल के काव्य में समाज के किसी एक पक्ष की प्रधानता है। बीरयाचा काल में बीर सामंती जीवन के चित्र हैं, सामान्य जन जीवन की घोर कष्टों से घाँव उठाने का भी प्रयत्न नहीं किया। भक्तिकाल का अधिकार काव्य स्वामी मुखाय तथा ऐतिहासिक काल का काव्य प्रायः जन-हिताय लिखा गया है। ऐसी दृष्टि में स्वाभाविक है कि प्रथम (भक्तिकाल) में समाज से अविच्छेद विरक्त तथा द्वितीय (ऐतिहासिक) में हीन आसक्ति का प्राधान्य हो।

बहुजन-हिताय काव्य का निर्माण तथा उसमें समाज की बदलती हुई विचार धाराओं का निरूपण व निवेदन आधुनिक युग के काव्य साहित्य की बड़ी माँग है।

पिछले ही वर्षों की समाज सरिता में विभिन्न प्रकार की चित्तनी भी साहित्यिक सामाजिक राजनीतिक आर्थिक आधिक तथा सांस्कृतिक वर्गों का आघातन हुआ उन सबका संश्लेषण हमें आधुनिक काव्य में स्पष्ट दृष्टिकोण पर होता है। इस युग का कवि जन-जीवन से इतना संयुक्त रहा है कि वह समाज की प्रत्येक समस्या को बड़े आत्मीय ढंग से सोच-विचार सका है।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम (१८५७ ई०) के पश्चात् भारतीय पराधीनता अधोगति की सीमा तक पहुँच गई थी । उसीमें से एक के अनन्तर दूसरे शासकों की दासता श्रृंखला में बँधा हुआ भारत अपनी समस्त विभूतियों से हाब हो बैठा था । शेष भी केवल इंदिया ऑफ फरम्पराओं अधिका और प्रज्ञान की सर्वप्राप्ति आत्मार्थे ।

ऐस ही समय में भारत अधिका दुर्भाग्य से देश में विक्टोरिया का शासन प्रारम्भ हुआ । विदेशी सम्मता तथा विज्ञान का नवीन प्रकाश हुआ । देश में आर्थिक तथा सामाजिक आन्दोलनों के प्रयुक्त महात्माओं का अविर्भाव हुआ । फलतः सर्वत्र आहुति की किरणें विकसित होने लगी ।

देश की उपयुक्त अवगत तथा उत्तम दशा के भित्तें कुत्ते स्वर हूँ घाबुनिक हिन्दी काव्य में सुनाई देते हैं । देश की तत्कालीन अधोगति का चित्र भारतीय हरिदत्त की इन पंक्तियों में प्रकट है -

सबो राज बन तेज शेष बस ज्ञान नचाई ।

कुछि नीछा भी उछाह सूर्या मिलाई ॥

भालछ काबर पनो निरक्षमता अब छाई ।

एही झूझता बँद परस्पर कहह मराई ॥

सब बिधि नाही भारत प्रजा कहुँ न रह्यो अवसंब अब ।

जागो जामा कसला मलन फेरि जागिही नाब कब ?

बिच भारत भूमि में कभी नव काव्य की बहुमता लिख्य कला कौतल की पूर्णता भी उही देश के लोगों को भीत माँघते देखकर कवियों का हृदय बेचना से उत्पन्न उठा है । पं० अम्बिकादत्त व्यास देश में व्याप्त अंधकार से बहराकर निराशा में प्राण छोड़ने तक को उद्यत हैं -

हाय । हाय । नहिं लखी जात हम पै अब भारत ।

तकि है हिम नलि प्राण यहै हिम निरक्षय भारत ।

नहि की यह बहराहट उसी उलट जन हित की भावना से उद्भूत है । भारतीय हरिदत्त ने हृदय की ऐसी ही व्याकुलता में समस्त

बेसवासियों को अपनी दुखता पर धाँसू बहाने के लिये आमंत्रित किया था । देश के विगत जीवन की तुलना में वर्तमान समाज की निपट घपी-गति देखकर कवियों की निराशा स्वाभाविक थी ।

भारत में बिस्टोरिया का राज्य प्रारंभ होने के पश्चात् समाज में हर्ष की एक सहर खी दौड़ गई थी । विविध वैज्ञानिक सामग्री से देश की स्थिति में सुधार होते दम बनना फूसी न समाई । स्वान स्वान पर पाठशालाओं परसनालों हाक व तार घरों की मुखर व्यवस्था धोंधेजी राज्य की विभूति थी फलत हिन्दी कवि धंधेजी राज्य का स्वागत करते हुए गा उठे -

जनत राज्य धंधेजी देखहु मारत भूमि मझरी ।
मजन राज्य को मज्य नाहि बिहि धारत किमी पुरारी ॥

बिस्टोरिया की प्रगति में किन्ती ही प्रतस्तिपाँ मिली गई । परन्तु उस हर्ष और प्रसंसा में भी एक चिन्ता ऐसा समाज के मानस को व्यक्त कर रही थी । धार्मिक संकट तथा विदेशी सभ्यता की धोंधी समाज पर बुरी तरह छाती का रही थी । धंधेजी तासन की वैज्ञानिक मुख बुधि धामा पर भुग्न बेसवासियों ने उन्हीं को उत्तति का परम प्रतीक समझा धत प्रत्येक क्षेत्र में सतका सम्भानुकरण हुआ । रहन-सहन और ज्ञान पान से लेकर मोलबात पढ़ाई-लिखाई, भाषा साहित्य सभी पर धंधेजी रंग छा गया । रोटी के स्वाद पर बिस्फुट बोटी के स्वाद पर दैन्ट घर के बहने होटम और मातृभाषा के स्वाद पर धंधेजी के कासे बारम चिरते देख कवियों का हृदय नाभी अनिट की धाँसका से कोप छल । उन्हीने ध्वन्य हास्य धारेख उपदेशो द्वारा समाज को उधेत किया । धंधेजी भापी लोगों से उन्हीने विमर्ष की -

“प्यारे हो के हिन्दुस्थानी बाबू मझेजी मत मोल”
कोट पैन्ट धारियो को उन्हीने समझाया -
छीहै न लोको पतनून साँवर मोरवा ।”

नवसिद्धि युक्तियों के नवीन आलोकन पर 'सम्पन्न बीबी की चिट्ठी' द्वारा व्यक्त किया। और नवीन जीवन की इच्छुक नारियों पर 'दीर्घा फिरंगन बनाय नाही देखी' के हास्यमय गीत लिखे।

इस प्रकार समाज के नव जागरण काल में एक ओर कवियों ने देश को नई आँखों से देखते देखा और दूसरी ओर पुरातन सम्प्रदाय के जर्जर कदमों को पिसकर नये आदर्शों के लिये भूमि तैयार की। धार्मिक पाखंड, जाति-पाति बाल-विवाह, पर्दा अभिज्ञा आदि कुप्राप्तियों को समाज से दूर करने के लिये कवियों ने कविता के साधन से नाटकों की भी रचना की।

सामाजिक जीवन का दूसरे पक्ष भी कवियों की दृष्टि से भोझस नहीं रहे हैं। धार्मिक विषमताएँ तथा राजनैतिक जीवन की कटुताएँ निरन्तर उनके सनस समस्या बनकर लड़ी रही हैं। अंग्रेजी राज्य में सामु होने वाले विविध टैक्स चुगी और करों के भार से पिछी हुई जनता की कष्टों आहों तथा 'धाम्म एक्ट' 'कर्मसुखर प्रेस एक्ट' आदि राजनैतिक बन्धनों से बन्धी पराधीन शासकों का कन्धन भारतेन्दु कासीन काव्य में बड़े स्पष्ट स्वर में व्यक्त हुआ। होसी बीपावली भारतीय समाज के हृदय निर्वेक पर्व हैं परन्तु धार्मिक कठिनाइयों में किस प्रकार जनता को कष्टप्रद प्रतीत होने लगे वे इसका एक विनोदपूर्ण चोखानी के पक्षों में देखिये —

है दुर्बला न बीरी कहा हम देखें होरी

इत अकास उत टिकस लगायो कर सब न कर जोरी।

तेज भनाज ठीक कछु नहीं भरत प्रजा सब ठोरी।

भीम मायत भी भोरी। है दुर्बला न भोरी।

यहाँ पर यह कहना अनावश्यक न होगा कि भारतेन्दु काव्य के कवियों ने जनता तक अपनी आवाज ध्वजध्वजा यात्रा में पहुँचाने के लिये प्रायः सोच-समझा न लौकिकता में ही राज्य की रचना की है।

उनके काव्य का उद्देश्य जनहित या अतः समाज संबंधित सम्पूर्ण काव्य कहूँगे वही सरल सुबोध भाषा में लिखा है।

११वीं शताब्दी समाप्त होते ही देश और समाज की परिस्थितियों में बहुत अन्तर हो गया। खिलान की वृद्धि के साथ पुरातन कविता अन्तर्विस्था तथा कुरीतियाँ बीरे बीरे मोघ होने लगी। अन्तःप्रवृत्ति की नये आदतों की नवीन रीतिरिधि की नवीन काव्य भाषा और नवीन प्रकार के साहित्य की। ऐसे समय में नवीन आदतों की रचना के लिये पुरातन आर्य सभ्यता के वे उत्तम लोग निकाले गये जिनके मन पर कभी नारतर्पण ने जगन्मूर्ख की उपाधि प्राप्त की थी। प्राचीन आदतों के आलोक में देशकालानुसार नवीन सभ्यता की रचना समाज का ध्येय बन गया। अतः २०वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काव्य में हमें पुरातन वैभव की धृष्ट नुमाई देती है। 'साकेत' प्रियप्रवास 'रामचरित चिन्तामणि' 'यमोदरा' 'हापर' आदि अनेक महाकाव्य व अष्टकाव्य पौराणिक उपाख्यानों पर ही लिखे गये। इसके अतिरिक्त नाटिक वगैरे पत्रिकाओं में पुरातन वैभव और प्राचीन आदर्श चरित्रों का मुख्यांश बना।

इसी भूमि पर राम कृष्ण न काव्य लिखा है

अपि मुनियों ने यही ज्ञान विस्तार किया है।

है क्या कोई देश यहाँ से जो न बिना है

समुपदेष्ट पीयूष सभी ने यहाँ पिशा है।

कविता का मुख्य विषय बन गया। पुरातन तथा नवीन स्थिति का तुलनात्मक चित्रण व नूतन समाज के आदतों का व्यवहार करने के लिये भी मैथिलीकरण कृत ने 'भाषा भाषी' की रचना की। पुस्तकी की इस पुस्तक का समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा। आजात नृप के हृदय को इसने अपनी ओर आकर्षित किया। राष्ट्रीय स्वाधीनता के इतिहास में 'भाषा भाषी' का बड़ी महत्व है जो कि महामाध्य शक्ति और मोक्ष के है।

भावों व विचारों के परिवर्तन के साथ काव्य की भाषा में भी परिवर्तन आवश्यक होगया है। ब्रजभाषा अपनी श्रुतिप्रधानता के कारण नवीन भावों के उद्गहन में सर्वदा असमर्थ समझी गई, यद्यपि उसका स्थान लड़ी बोली को दिया गया। इस युग में कवि समाज हित के प्रति इसमें निष्ठावान् थे कि राष्ट्रीय व दश शक्ति के नाबोझोघन के सिधे उन्होंने तीन सौ वर्षों के साहित्य संस्कार से परिष्कृत ब्रज भाषा का मोह त्यागकर जनशब्द व परप लड़ी बोली को ही काव्य की भाषा स्वीकार किया क्योंकि लड़ी बोली इस समय जस प्रचलित भाषा थी।

शास्त्राय महावीरप्रसाद द्विवेदी जिनके नेतृत्व में बीसवीं सदी का काव्य प्रणीत हुआ था व कवियों को उन व्यवहारों की ओर लाने में जो वीरों के अनुसार 'धर्मसंस्थापनार्थाय' वर्ग्य ग्रहण करते हैं। द्विवेदी युग के काव्य में जन हित का स्वर सबसे ऊँचा है। केवल काव्य के सिधे काव्य की रचना करने वाले कवियों के विषय में इस युग की सामान्य धारणा थी :-

देस की मलाई भला छाई जो न सोहि मन

नाहूँ बिताई कबिताई में बयस क्यों ?

इस युग का काव्य तत्कालीन सामाजिक विचारों का पूर्ण प्रतिबिम्ब है। इसमें दो भावों की प्रधानता है। प्रथम समाज सुधार और द्वितीय राष्ट्र शक्ति। समाज सुधार के क्षेत्र में 'धर्मसमाज' व 'राष्ट्रीय सेवा' 'इंडियन नेशनल काँग्रेस' के आन्दोलनों का काव्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। सामाजिक जीवन में सम का महत्त्व व पारलौकिक मोक्ष प्राप्ति के स्थान पर इसी जीवन में मानव भाव की सेवा द्वारा मुक्ति की प्राप्ति का प्रचार इस युग में हुआ। द्विवेदी सुधीन काव्य में इन भावों की प्रतिध्वनि हमें सुनाई पड़ती है। पिता के परशोक बास और भाई के जनपद से हृत्प्रेतम भरत की 'रामचरित मानस' के बसिष्ठ ने समझाया था :-

धुनहु मरत माथी प्रबल बिसल बहेहु मुनिनाथ ।
हाणि साम बीचन मरण यत्त अपयत्त विधिहाथ ॥

किन्तु माध्य के स्थान पर अम और उत्साह ॥ पञ्चपाती मैथिलीमरछ
गुप्त के बसिष्ठ भारत को कमव्यता का आदेश देते हुए कहते हैं -

अब उठो हे बखो धीरज धार
बैठते हैं धीर क्या बरहार ?
धनु सर सम तुम सही यह साङ
घतत कर्म क्षेत्र है गरमोक
मरण है प्रबकाउ बीचन काय ।

सोकसबा को ही हरिमक्ति समझकर परमार्थ का सुन्दर आदर्श
पं रामनरेश बिपाठी न अपने काव्य 'मिसन मे उपस्थित किया है ।
इहलौकिक कर्तव्यों से विमुक्त होकर जन में मुक्ति की साधना करनेवाले
मनुष्यों को उन्होंने बताया -

ईश्वर भक्ति लोक सेवा है एक अर्थ सो नाम
जन मे बस कैसे हो सकता है मनुजोचित काम ।
जगती में सुख प्राप्ति बहाना लेकर निज अम सति
मनुष्यता का अर्थ यही है और यही हरिमक्ति ।

समाज सुधार के क्षेत्र में कवियों ने स्थियों की उन्नति सिद्धा के
विस्तार व पारिवारिक जीवन को सुन्दर बनाने पर विशेष बल दिया है ।

काव्य ने राष्ट्रीय मान्यताओं की अभिव्यक्ति को प्रकार से हुई है ।
प्रबल पराधीनता के प्रति कटु आक्रोश के रूप में बुरी बीन-हीन दमित
वर्ग के प्रति सहानुभूति के रूप में । पराधीनता पात को तोड़कर स्वतंत्र
होने की प्रबल कामना सोहनलाल त्रिवेदी के निम्न गीत में अभिव्यक्त
हुई है -

हम मातृभूमि के धीनिक हैं आजादी के मतवाले ॥
बलि बेरी पर हँस हँस करके निज धीन बढ़ाने वाले हैं ।

सम्मान गुर बीरों की है हम बास नहीं कहलायेंगे ।

या ता स्वर्तन हो जायेंगे, या रण में मर मिट जायेंगे ।

दीन-हीन दमित वर्ग में बसून तथा किसानों के प्रति कवियों का श्मशान विरोध एवं स आक्रामक हुआ है । इतिहास के क्षेत्र में ग्राम और श्रमिक ही राष्ट्र के जीवन आधार हैं । किन्तु उन्हीं को सर्वाधिक उपेक्षित व दुर्बल देखकर कवियों ने नई मार्मिक शब्दों में उनकी दुर्दशा के चित्र प्रकट किये हैं ।

इस भांति द्वितीय युगीन काव्य सामाजिक जीवन के अनेक पक्षों को समेटकर आगे बढ़ा है ।

समाज की मति परिवर्तनशील है । बिनापकर इस वैज्ञानिक सभ्यता में उसकी मति प्रतिबिम्ब ही नहीं प्रतिपन्न परिवर्तित हो रही है । अब एक घंटे में मनुष्य सैकड़ों मील की दूरी तार कर लेता है वह भारत में ही बैठा हुआ दुर्गम अमेरिका और इंग्लैंड के मनुष्यों से बातचीत कर लेता है समुद्र के अन्तस्तल और आकाश की ऊँचाई तक पहुँचना उसके लिये आसन्न मुकुर हो गया है तब मानव प्रकृति में भी प्रतिपन्न परिवर्तन हो ता क्या आश्चर्य है ?

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक समाज की अवस्था में बहुत परिवर्तन हो गया । मानव ने देश और समाज की छोटी परिसि की छोड़कर विश्व के विद्यालय प्रांगण में प्रवेश किया जीवन धारा पुराने बूनों को छोड़कर नवीन भूमि पर संवर्धित हुई । पन्थ श्रमिकों का काव्य में स्मृत के स्थान पर गुरु की समूह के स्थान पर व्यक्ति की शान्त की छोड़कर अन्त की व्यक्त को छोड़कर व्यक्त की तथा सुख को छोड़कर दुःख की कर्तव्य विशेष रूप से होने लगी । काव्य में व्यक्तिगत समाचारों का चित्रण प्रमुख बन गया । कोई सामाजिक वचनों से कोई आर्थिक कठिनायियों से दूर मोड़ है अन्तर द्वितीय दूसरे काल्पनिक मोड़ की शोख में निमग्न रहने लगा । निराशा और दुःख की अभिव्यक्ति

बाध्य में बिह्व रूप से हुई । हृदय की घनीभूत पीड़ा धीमे बनकर, तथा 'भीर भरी सुख की बरसी' के रूप में छाकर काव्य भूमि पर बरसने लगी । बाध्य संसार में स्नेह और सौन्दर्य का समाव पाकर कवियों ने हृदय में ही सौन्दर्य का संसार बना लिया । भूमिदानन्दन पन्त ने लिखा —

मैं सृष्टि एक रत्न रहा जबल भावी मानव के हित भीतर
सौन्दर्य स्नेह उस्मास मुझे मिला सका नहीं बग के बाहर ।

मानव के बाह्य बन्धनों के प्रति बिद्रोह की उग्र भावना लेकर कविद्वय बन्धन से मधुशाला मधुकासा के रूप में समाज को चुनौती दी —

उड़ान तरंगों से अपनी मस्तिष्क गिरजालय बेबामय
मैं तोड़ गिरा डूबी पल में मानव के बंदी कुछ निश्चय ।
जो झूम किनारे टट करले संकुचित मनुष्य के जीवन को,
मैं काट सबों को डालूँ की कसका डर मुझको मैं निर्भय ।
मैं बहा बहा डूगी अणु में पालकों के गुह मङ्ग दुर्जय ।

हिन्दी का छायावादी व रहस्यवादी काव्य संस्कारों में मधुबन समाज की उन आन्तरिक अनुभूतियों का प्रतिबिम्ब है जो बाह्य संसार की बटिमताओं की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुई हैं । रहस्यवादी प्रसिद्ध कवित्री महादेवी वर्मा ने अपने विषय में लिखा है "अनेक सामाजिक शक्तिओं में बसे हुए निर्जीव संस्कारों का मार डाले हुए और विविध विषमताओं में साँस लेने का भी खबरदार न पाते हुए जीवन के ज्ञान ने मेरे भाव जगत् की बेचना को बहुराई और जीवन को श्रिया दी है ।"

निराशा और दुःख मानव के निरन्तराग्र भाव नहीं हैं । समय के साथ इनमें अनिवार्य रूप से परिवर्तन होता रहता है । बड़े से बड़ा कष्ट समय पाकर दूर हो जाता है, निराशा भाव में परिणत हो जाती है । प्रकृति के इसी नियम के अनुसार काव्य में निराशा की काली पगलों के मध्य भावों की 'स्वर्ण किरण' चमकने लगी । वैयक्तिक दुर्घटना-विपदा

की झुड़ परितो तोड़कर छायावासी कवि व्यापक मानवता तथा नमीर प्रीतिन दर्शन की ओर मुड़े । काव्य में उन्होंने ऐसे मार्गों की खोजना की जिन्होंने आचार पर समग्र संसार मुक्त, शांति और प्रेम की दिम्भता प्रकट कर सकें ।

इस समय समाज का ध्यान मसित कलाओं के पुनरुत्थान तथा भारतीय दार्शनिक व आध्यात्मिक धर्मों के पुनरुद्भव की ओर विशेष रूप से आकर्षित था । विश्व नृत्य संगीतादि कलायें उत्थिति पर थीं । उपनिषद्, गीता बीठ दर्शन के आचार पर नवीन दार्शनिक सिद्धांतों की रचना हो रही थी । स्वामी रामतीर्थ रामकृष्ण व विवेकानन्द का दार्शनिक प्रवृत्तता तथा महात्मा गांधी व योगेश्वर धरमिन्द का आध्यात्मिक व्यक्तित्व युग को प्रभावित कर रहा था । छायावासी कवियों ने इस नवीन सांस्कृतिक उत्थान में पूर्ण सहयोग दिया । प्रसाद की 'कामायनी' दिनकर का 'कुरखेन', पन्थ और निराला का जीवन दर्शन युग की सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है । इस वैज्ञानिक युग में जब कि मनुष्य न पूर्व का रह गया है और न पश्चिम का वह एक समन्वयकारी सरकति के निर्माण की परम आवश्यकता समस्त कविवर मुमित्रामन्त्रन पन्थ ने 'ज्योत्स्ना' नाट्य रूपक की रचना की । इसमें उन्होंने 'आदित्य बड़वाड़ की मांसल प्रतिमा में पूर्ण के अन्ध्यात्म प्रकाश की आरम्भ भर एवं अन्ध्यात्मवाद के अन्तिम-पंजर में मृत या बड़ विज्ञान के रूप रंग भरकर' नवीन युग की सापेक्षता परिपूर्ण मूर्ति का आदर्श उपस्थित किया है । नवीन विश्व सम्प्रदाय के कुछ अपादेय सिद्धांत हैं -

मूर्ति जय ध्वनि से आसमान, सब मानव मानव है समान ।

निज कीमल मति हृदयानुभूत सब कर्म निरत हों भेष मूढ ।

बहुल भाष ही निदर मूढ सब एक राष्ट्र के सपनाम ।

श्री अवतारकर प्रसाद के 'कामना' नाट्य रूपक में इन्हीं सिद्धांतों की पुष्टि है । 'कुरखेन' में श्री रामधारी सिंह दिनकर ने स्पेह और बलिदान को मानवता का आदर्श बताया है -

स्नेह भविष्यतः होंगे माप नरता के एक
भरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से ।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अमर अभिसारी इन कवियों की पवित्र एवं उदार भाव भूमि में कुर्बान की उपेक्षित मानवता स्नेह के संभव से पुनः भी उठी है । 'पतिता' परकीया बेक्या बिचबा के रूप में समाज से उपेक्षित नारी को कवियों ने प्रेम और करुणा के बल पर पुनः आत्मीयता प्रदान की है । निराशा ने बिचबा को 'हीनसिद्धा सी घात' 'इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी' जैसे पवित्र विरोधपूर्ण प्रदान किये हैं । नरेन्द्र शर्मा ने बेक्या को 'सहमी' 'देवी' बनाकर माई का प्यार समर्पित किया है । नारी को इस युग के कवियों ने पवित्रता और 'सौन्दर्य' की साकार प्रतिमा सिद्ध किया है ।

छायावाद के अवन्तर 'प्रगतिवादी' काव्य बारा का प्रचार हुआ जिसमें समाज की आर्थिक समस्याओं का चिन्तन है । मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अनुसार 'अर्थ' समाज व्यवस्था का मूल आधार है । मार्क्स के इस सिद्धान्त से प्रभावित कवियों ने समाज को पूँजीपति और मजदूर दो वर्गों में विभक्त करके देखा है । काव्य में दोनों वर्गों के जीवन की विपरीतताओं का विस्तृत चित्रण हुआ है । सामान्यतया 'प्रगतिवाद' निम्न और मध्य वर्ग के जन जीवन का काव्य है । इस काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति निरन्तर विस्तार रूप ग्रहण करती गई, समाज और साहित्य का संबंध दृढ़तर होता गया । कविगण जीवन की प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया को काव्य में ध्वनित कर उसकी सीमा को व्यापक बनाने में प्रयत्नशील हुये । मानव भाव को सुखी देखने की आकांक्षा में रत प्रगतिवादी कवि बाह्यता था —

कोई न घनी यह जाये कोई न बरिख दिखाने
जो काम करे सुख लोगे यह स्वर्ण नियम बन जाये ।

'प्रगतिवाद' के बाद प्रयोगवाद तथा 'नई कविता' में कविगण आधुनिक जीवन में बढ़ती हुई बीधकता और वैज्ञानिकता का विरोध करने

में संलग्न हैं। 'मयी कविता' धार्मिक यांत्रिक जीवन का समार्थ विषय है। आज मनुष्य जीवन में स उर्ध्व दिखाई देती है न उल्हास। मोहक आवाजें भी अब नहीं रही। आज तो उसे केवल विज्ञासा है विमान के नूतन आविष्कारों की तथा बेस विदेशों की हार-भीत की। चारों ओर बुधि का साम्राज्य छाया हुआ है। इस भौतिक युग की सर्वोच्चता — ईश्वर कहिये स्वामी कहिये धर्म-ध्यान कुछ भी कहिये — मसीहों हैं। मनुष्य उनका एक पूर्वा भाग है, इसीलिये नया कवि कहता है —

तप और साधना से कोसों दूर
घपनी बनावट से भबदूर
मैं मसीन युग का हूँ भाग एक छोटा यंत्र
— भारत धूपण अक्षय

आज जीवन की परिमाणा बदल गई है। सर्वस्व के सान बदल गये हैं। मनुष्य के 'बाने' और 'प्रेम के तराफ' सिखने का युग बीत गया है। छोपार और कमल भी अब कहीं दिखाई देते हैं। पनचट और बघत की रंमरेनियाँ भी नहीं रही। प्रम बैरना से मनुष्य धार्मिक जीवन की इस व्यस्तता और बीडिफता का निरूपण करते हुए कवि लिखता है :-

अब वह वियोग कहीं नमेष कहीं।
कहीं सन्देस कट,
जिह्वा के उक्त बाधुयान
दबरे से टेसीप्राप
और विज्ञापन से भूम जाते
हसों दिशाधीन में पत्र।
व्यथ 'मिथुन' अमपेक्षात 'अमरणीत'
और सच पृथो तो
इस व्यस्त युग में वेम विन्ग के
भारत प्रसनों के बीच

प्रम के विरह के घाँसू बहाने की
पुस्तक भी कहाँ है ?

— देवराज उपाध्याय

‘नयी कविता’ में मध्यम वर्ग के जीवन और समाज की मानसिक
कूँठाओं तथा दैनिक स्थिति का विचित्र विशेष रूप से हुसा है। व्यंग्य
प्रधान शैली में इस युग की कविता ने समाज की ह्यासोग्मुक्षी प्रवृत्तियों को
उन्मुख किया है। कला की दृष्टि से नई कविता में चाहे जितने सुशु-
द्ध हों नई सामाजिक चेतना को स्वरूप देने में इसके महत्त्व को कोई
अस्वीकार नहीं कर सकता।

नारी - तुलसी की दृष्टि में

तुलसीदास की रामायण जितनी बार बार प्रसिद्ध है उतनी ही तुलसी की 'शोक संवार झूझ पसु नारी' से सब ताड़न के अधिकारी' वाली चौपाई प्रसिद्ध है। यह एक ऐसी चौपाई है जिसके कारण तुलसी की नारी भावना का सदा सफा की दृष्टि से देखा जाता है और जिसके कारण उन्हें न जाने कितनी खरी सोटी मुनाई गई हैं। नारी की चर्चा करते ही यह चौपाई तुरन्त अस्तिष्क में धा उपस्थित होती है और तब तुलसी के नारी विषयक विचारों पर अति भाँति के तर्क वितर्क प्रारंभ हो जाते हैं।

क्या सचमुच तुलसीदास नारी को ताड़ना की अधिकारी समझते थे ? यदि रामायण की कथा में चित्रित नायियों पर दृष्टिपात करें तो इस प्रश्न का सामाजिक मासानी से हो सकेगा। भारतीय शास्त्रों में और भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान बहुत ऊँचा है। वह सर्वत्र पूजा के योग्य मानी गई है। तुलसी वैदिकशास्त्रों के ज्ञाता थे उन्होंने नाना पुष्पाणि विषमा यमों का अध्ययन किया था तब क्या वे नारी के इस महत्त्व से अपरिचित थे जो उन्होंने पूजा के स्थान पर नारी को ताड़ना की अधिकारी बठाया ? तुलसी के विषय में हमारी ऐसी धारणा निःसंशय ही हमारा मिथ्याज्ञान है। पत्नी की घोर प्रताड़ना सहकर भी जिस सत्य कवि ने गृहस्थाश्रम को अनुप्य जीवन का आधारभूत ही नहीं अनिवार्य धर्म माना हो और जिसके महत्त्व का इतना मध्य विचार किया हो कि गृहस्थाश्रम से अप्रिय अनुप्य को घर, दूधर, खान की उपाधि दी हो वह कवि नारी को केवल ताड़ना की अधिकारी मानेगा यह बात किसी भी दृष्टिकोण से तर्क की कमोन्नी पर खड़ी नहीं उतरती। राजा बसरथ की घोर में गमने हुए चाप राजकुमारों के तीव्र पर तुलसी स्वयं तो मुग्ध थे ही किन्तु जो

व्यक्ति इस सौम्यर्य पर गुम्ह हुआ नहीं जानता तुमसी की दृष्टि में संसार में उसका जन्म भला क्या है । व कहते हैं -

पद कंजनि मंजु बनी पनही बगुही सर पकज पात्रि सिधे ।

परिका सग बेमत होमत हैं घरबू तट बीहट हाट हिधे ।

तुमसी अस बालक सों नहि मेह कहा जप जोय समाधि किये ।

गर ते सर, गूबर, स्थान सधान कही कय में फल कौन बिधे ।

तुमसी सम्यक् बलि के इसलिये उन्होंने नारी का ठिरस्कार किया यह बायणा उनके इस पद से निर्मूल हो जानी चाहिये । उन्होंने गृहस्थाश्रम की महिमा के समझ जप जोग समाधि को धर्म बताया है । सब जानते हैं - गृहस्थाश्रम का मूल नारी है । 'बिन बरनी पर धुत का डेरा' कहावत प्रसिद्ध है । तुमसी ने गृहस्थाश्रम को महत्व दिया इसका तात्पर्य है कि उन्होंने नारी का बहुत ऊँचा स्थान प्रदान किया है । जो नारी राम जैसे धनधारी बालक को गोद में बिलाने का सौभाग्य प्राप्त करती है उससे बढ़कर विश्व में कोई भाग्यवान है तुमसी इसे नहीं मानते । वे कहते हैं -

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्मूल निगम निमोद ।

जो धन प्रेम भगति कस कौसल्या के बोल ॥

कौसल्या जब बोलत जाई, दुमुक दुमुक प्रभु बर्नाहि पराई ।

निगम नेति धिध अन्त न पावा ताहि बरै जननी हठि भावा ।

राम का महत्व पीछे है पहले उसका महत्व है जिस माता ने इन्हें जन्म दिया है । तुमसी ने नारी के इस मातृरूप की शतशं जन्मना की है । सम्पूर्ण रामायण में उन्होंने माता को पिता से ऊँचा स्थान दिया है । राम माता को प्रणाम पहले करते हैं, पिता को उसके बाद । राम दशरथ ने राम को बीरह वर्ष के वनवास की आज्ञा दी है कौसल्या को इस आज्ञा के ऊपर आज्ञा देने का अधिकार है । वह चाहे तो राम को वन जाने से रोक ले क्योंकि संन्यास पर माता का अधिकार पिता से बढ़कर है । इसीलिय वह राम से कहती है -

जो केवल पितु धामसु जाता । तो जनि जाहु जनि बड़ माता ।

जो पितु मातु कहैत न जाना । ती कानन सत प्रथम समामा ।

नारी के महत्त्व की इससे बड़ी व्याख्या और क्या होगी ? यहाँ तुलसी ने प्रकाशम्बर से 'पितु सतपुण्य माता गौरवेण्यतिरिच्यते' के शास्त्रोक्त मन्त्र की पुष्टि की है ।

पुत्री और पुत्रबन्धु रूप में तुलसी ने नारी का बड़ा सम्मान दिया है । नारी के इन रूपों के बर्णन में उनका दृष्टिकोण पुरातन मान्यों के अनुकूल है । मध्ययुगीन समाज में नारी का स्थान बहुत गिर गया था । घर में कम्पा का जन्म प्रभुम माना जाने लगा था । मध्ययुगीन प्रेमसाध्यात्मकों में हम पढ़ते हैं —

का संबरछु बैठी जग माही । कुहिना सम बैठी जग नाहीं ॥

परबि सीत जो नवत न नावा । जगमठ भार सीत भुइ लावा ॥

बाहो दिन जनमी घर भारी । माये धामि बड़ाई मारी ॥

सच्चात् संसार में माता-पिता की सबसे बड़ी शत्रु कन्या है । वह जिस दिन घर में जन्म लेती है उसी दिन से माता-पिता का घर नीका हो जाता है । किन्तु तुलसीदास का मानक हृदय पुत्रियों के लिये ऐसे विचारों की कल्पना भी नहीं कर पाता । उन्होंने रामायण में सीता भारि पुत्रियों के लिये माता-पिता के प्रेम का जैसा अनुपम चित्र उपस्थित किया है उससे पत्थर का हृदय भी पिघल जाता है । पुत्रियों की विदाई के अवसर पर राजा जनक और राजियों की व्याकुल छत्पटाहट बड़ी मार्मिक है । बारस जाने बाभी है यह सुनते ही राजियाँ इस प्रकार व्याकृत हो उठीं मानो बोके जल में पड़ती छत्पटाती हों । वे पुत्रियों को बार-बार पीर में बिठाकर नरे गले से आधीर्बाद लेती हैं —

होण्डु संतत विरहि पिपायी । बिब बहिवात्र धमीस हमारी ॥

सात समुद्र पुर सेवा करैहू । पति दस सति धायनु भनुछेहू ॥

किन्तु इतने पर भी मन नहीं जानता । वे पुनः पुत्रियों को हृदय से

समाकर रोने लगती हैं और कहती हैं 'ब्रह्मा ने संसार में सभी जाति की रचना ही क्यों की है ? यी राम को अपनी प्राणाधिक भ्रिम पुत्रियों को दीपते हुए माताओं ने जो नियम की है उसके एक-एक शब्द में मूर्तिमती करणा विद्यमान है । उनके इन बचनों में हृदय भिपटा सा घाता है —

हरि विनय सिध रामहि समर्पी ओरि कर पुनि-मुनि कहूँ ।
 बसि जाउँ तात सुजान तुम कहूँ विवित बसि सबकी यहूँ ।
 परिवार, पुरजन मोहि राजहि प्राण भिय सिध जानिबी ।
 'तुमसी' सुसील समेह बसि निज बिकरी हरि मानिबी ।

इसके बाद पुत्रियों से लिपटकर माताएँ जिस प्रकार रोई उस हरम का बखन कठिन है । पुत्रियों से बार-बार सँटनी हुई माताओं को सखियों ने इस प्रकार समझ किया जैसे हान की व्यापी हुई माय को कोई बछड़े से समझ कर दे ।

यह स्थिति माताओं की है । पिता जनक को भी पुत्रियों से बिछुड़ने का दुःख इनसे कम नहीं है । राजा जनक जो परम वैराग्यवान् कहलाते थे सीता को बिदा होते देख जेयें छोड़ बैठे । तुमसी कहते हैं —

सीम बिनोकि बीरठा मायी । रहे कहाकर परम बिदयी ॥
 भीन्हि राम उर नाम जानकी । मिटी महा मरघार जान की ॥

पुत्री प्रेम में राजा जनक की ज्ञान मर्यादा एक ओर रती रह गई । कन्याओं के लिये इतना प्यार भारतीय परिवारों की परम्परा रही है । तुमसी इससे अभी भीति परिचित थे यत स्त्रियों के पतन की उस ओर स्थिति में भी उन्होंने उसी परम्परा का धारक ग्रहण किया है । उन्होंने परिवार में कहीं कन्या का महत्त्व कम नहीं दिखाया ।

पुत्रवधू के रूप में नारी का महत्त्व तुमसी ने सीता धारि वधूओं के लिये घयोध्या में लिये गये स्वागत-सत्कारों और बास समुद्र से प्राप्त प्रेम व्यवहारों द्वारा प्रदर्शित किया है । एहत्वात्मक यै पुत्रवधू का स्थान

उठना ही महत्वपूर्ण मामा गया है जितना पुत्र जन्म का । बार पुत्रों को पाकर ययोध्या का राज परिवार जितना आनन्द मग्न हुआ था पुत्रबन्धुओं को पाकर उससे अधिक आनन्दित विछाया गया है । सीता आदि पुत्र बन्धुओं को देखकर कोऊस्या आदि माताएँ इतनी प्रसन्न हुईं मानो योगी ने परम तत्त्व पर लिया हो, योगी ने समृत्यु पा लिया हो जन्म के बरिखी को पारसमणि मिल गई हो अपने को मेघ-साम और गूँगे के मुल में सरस्वती आ बिछकी हो । राजा दशरथ ने उन्हें पुत्रियों के समान प्यार किया और दानियों को भादस दिया -

बहु सरकिनी पर भर आई । एकेहु नयन पसक की आई ॥

परान्त बहुतों छोटी हैं, अपरिचित घर में आई हैं । इन्हीं इस प्रकार प्यार पूर्वक रतना जैसे मेरों को पसलें रखती हैं । सचमुच कीउस्या ने उन्हें इसी भाँति रखा । सीता से उन्होंने कभी दीप की बत्ती हटाने के लिये भी नहीं कहा । तुमसी की इस भावना में 'बचनार्थरतु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का आदर्श निहित है । रामायण की सम्पूर्ण कथा में तुमसी ने नारी के इस सम्मान का विशेष ध्यान रखा है । तनिक तुमना कीजिये तुमसी के नारी संबंधी दृष्टिकोण की प्रेमाख्यानों में वर्णित नारी की स्थिति से । प्रेमाख्यानों में नारी को-

ठिरिया भूमि लङ्का की बरि खीत जो लङ्का होइ तेहि केरी ।

कहकर बहुत तुच्छ स्थान दिया गया है । आगसी ने नागमसी को दुनिमों बंधा बठाकर आभ्यात्मिक मार्ग में विभिन्न स्वरूपा माना है । रतनसेन उसे स्पष्ट सव्यों में कहता है -

तुम ठिरिया मति हीन मुम्हारी । मूरत सो जो मते भर नारी ॥

समुदाय के व्यवहारों का जितना सुन्दर वर्णन तुमसी ने किया है ठीक उसके विपरीत प्रेमाख्यानों में वर्णित है । इनमें सर्वत्र सासों के कठोर व्यवहार का वर्णन दिया गया है । 'विभावली' में सपिमा बिबा

पत्नी के समस्त सास-ननदों के कठोर व्यवहार का वर्णन करती हुई समुरान में बहुत सावधान रहने की शिक्षा देती है -

कठिन रहन समुरे कर चाहै । तब ही सुसल बँठ बन चाहै ॥

बोलत ऊँच सामु बेह गारी । ननरी नीच बोल बेबहारी ॥

इसी तरह की बहुत सी बातें हमें कही गई हैं किन्तु नारी-सत्कार का जो प्रावर्ध तुमसी के मस्तिष्क में था उसे उन्होंने बाह्य नहीं गिरान दिया । इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि तुमसी का नारी के प्रति दृष्टिकोण क्या था ? एक ओर सास-ननदों से प्रताड़ित पुत्र-बन्धुओं का वर्णन है दूसरी ओर रामायण में बौद्धत्या और सीता का सुन्दर आदर्श है जिसमें नन जाती सीता को देखकर कौसल्या अत्यन्त व्यथित हो कहती है -

नयन पुठरि करि प्रीत बढ़ाई । रखैत प्राण बानकिहि साई ॥

कल्प बेसि बिमि बहु बिष जाली । सीबि सनेह सलिन प्रतिपाली ॥

माता पुत्री और पुत्रबन्धु के रूप में नारी के प्रति तुमसी के विचारों से प्रबलत होने के उपरान्त अब आइये नारी के पत्नी रूप पर । पत्नी रूप में नारी का वर्णन जिस प्रकार तुमसी ने किया है उस पर बहुत आश्चर्य किये जाते हैं । उसका प्रमुख कारण है तुमसी द्वारा की गई पतिव्रत धर्म की विस्तृत व्याख्या । जैसा कि अन्य साम्प्रकारों से माना है तुमसी ने उसी के अनुक्रम नारी धर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है -

मातु पिता भ्रात हितकारी । मित्र मुक्त-ग्रह सुनु राजकुमारी ॥

अमित्र शत्रु भर्ता बीरोही । अन्नम सो नारि को सेव न तैही ॥

बूढ़ रोग बस जड़ बन हीमा । अन्ध बधिर कोभी प्रति बीना ॥

ऐसेहु पति कर किय अपमाना । नारि पाव यमपुर सुल नाना ॥

एकहि धर्म एक व्रत नेमा । काय बचन मन पतिपन प्रेमा ॥

सहज अपाजनि नारि, पति सेवत सुममति लहै ।

पति के प्रति पत्नी की इस निष्ठा में वास्तव की सी भावना इष्टि गोचर होती है । ऐसा प्रतीत होता है कि तुमसी पुरुष को बहुत ऊँचा

पद लेकर नारी को उसकी दासी बनाना चाहते हैं। किन्तु तुमसी की यह
 पारणा एक तो पुरानी परम्परा पर आधारित है दूसरे इस कथन के
 प्राथमिक रूप को छोड़कर यदि इसकी अर्थगम्भीरता पर विचार किया जाय
 तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि तुमसी ने नारी के कितने व्यापक हित को
 ध्यान में रखकर पतिव्रत धर्म की उपर्युक्त व्याख्या उचित समझी है। उस
 युग में हिन्दू समाज के उच्च वर्गों में स्त्री के पुनर्विवाह की प्रथा रूढ़ गई
 थी। पुरुष के कितने ही विवाह संयम थे किन्तु सामाजिक व्यवस्था में स्त्री
 का एक मात्र आधार उसका पति था। पड़सिककर नारी अपने पति
 पर लड़ी हो सके इसके लिये 'स्वीधूहीनाधीयताम्' की वेदोक्त मर्यादा ने
 रोक रखा ही था। पति के बिना समाज में नारी का न कोई आधार था
 और न कोई स्वातन्त्र्य। यद्यपि तुमसी की दृष्टि में एक पत्नीव्रत का भी
 उतना ही महत्त्व था जितना पतिव्रत धर्म का उन्हींने राम के जीवन
 को अपनी कथा का आधार बना ही इसलिये था कि उनमें ने सब कुछ
 विद्यमान थे जिनकी एक आधार समाज की स्थापना के लिये उदाहरण
 स्वरूप प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी किन्तु इहत्वाधम व्यवस्था के लिये
 और समाज के उच्च नैतिक स्तर के लिये वे यह परमावश्यक मानते थे
 कि स्त्रियाँ कट्टरता से पतिव्रत धर्म का पालन करें। पुरुष की पशु
 प्रवृत्ति से या समाज की दृष्टि से नारी को बचाने का एक मात्र
 उपाय वे इसी धर्म को मानते थे। इसीलिये उन्हींने अपने धर्म से विमुक्त
 होने वाली नारी को इहमोक्ष और परमात्म दोनों में भ्रमकर भास
 बिठाया है। इसमें पुरुष की महत्ता इतनी नहीं जितनी नारी की मुरझा
 और समाज कलहता का ध्यान रखा गया है। धर्म के वैज्ञानिक युग
 में भी जहाँ नारी पुरुष से घायल बहती दिखाई दे रही है नारी के लिये
 पुरुष के आश्रय का महत्त्व कम नहीं हुआ। प्राथमिक दृष्टि से जब वह
 अपने ही अपने का स्वतन्त्र माने किन्तु स्त्री के जीवन में पुरुष का आभाव
 धर्म भी उतना ही कष्टकर है। पुरुष के अभाव में जीवन की अपाणि

समस्यायें मूँह फाड़कर सामने लड़ी दिखाई देती हैं । इसीमिमे तुमसी कहते हैं -

अमित बानि भर्ता बीबेही । अचम सा गारि ओ सेव न ठेही ॥

इन पंक्तियों में वास्तव का भाव उतना नहीं जितना बीबन में पति द्वारा प्राप्त सुविधाओं के मिमे कृतज्ञता का भाव है । पति-पत्नी के मध्य समबुद्धि और प्रेमसूत्र का हृदयबन्धन तभी होता है जब दोनों एक दूसरे के प्रति अपने अपने कर्तव्य का हृदय से पालन करें । सीता ने पतिव्रत निभाया तो राम ने पत्नीव्रत का अव्युत्त धावन प्रस्तुत किया । बासी और स्वामी की भावना रखकर तुमसी ने मारी बर्मे की इतनी विस्तृत व्याख्या नहीं की । हमारी समाज व्यवस्था इस प्रकार की है कि यहाँ मातृरूप में मारी का महत्व अधिक है और पतिरूप में पुत्र्य का । फिर भी तुमसी ने पत्नी की प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान रखा है ।

चाहे स्त्री हो या पुरुष पति हो या पत्नी जो कोई अपने कर्तव्य और मर्यादा के विपरीत व्यवहार करता है तुमसी ने सर्वत्र उसकी निन्दा की है । पुत्र्य के प्रति उनका विशेष पक्षपात ही ऐसा नहीं कहा जा सकता । राजा पुत्र्य है और मम्बोदरी का पति है । तुमसी ने मारी बर्मे की जैसी व्याख्या की है उसके अनुसार राजा चाहे बीबा दुष्टत्व करे, वह चाहे परस्त्री का अपहरण ही क्यों न करे, पर मम्बोदरी का कर्तव्य है कि वह पति का अपमान न करे और मर्यादा रखे उसकी हानि में हानि मिलाती रहे । किन्तु इसके विपरीत तुमसी ने मम्बोदरी द्वारा राजा की कड़ी भर्त्सना कवाई है । पुत्र्यत्व के गर्भ में बुरा राजा को चाहे हाथों से ही हुई मम्बोदरी कहती है:-

कंदसमुक्ति मन राजकुमतिही । लोहन समर तुम्हहि रजुपतिही ॥

रामानुज लज्जु ऐक लबाई । सोउ नहि नावेहु पति मनुसाई ॥

पिय तुम्ह ताहि जितव संवाया । बाके दूत केर यह काया ॥

कौमुद सिन्धु नाहि तब संका । आयउ कपि नेहरी अशंका ॥

एगबारे हति बिबिध सञ्चारा । देखत तोहि अन्ध तेहि मार ॥
 बारि सरस पुर कीन्हैसि सारा । कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा ॥
 बनक समा अगनित भूपामा । यह तुम्हें बस अतुल बिसाला ॥
 भवि अनुप जामकी बिघाही । तब सखाम भितेहु किन नाही ॥
 सुपमता कै कति तुम बेकी । तदपि हृदय नहि जाज बिसेली ॥

इसनिवे अछट नही है कि —

अब पति मृषा गाल जनि मारतु । मार कहाँ कसु हृदय बिचारतु ॥

मन्दोदरी की पति के प्रति व्यक्त उपर्युक्त भावनाओं में कितना कटु व्यंग्य निहित है । उसने राजल को घरी लोटी सुमाने में बसर नहीं छोड़ी । बली के बाक्यों से तिममिमाकर यदि राजल कहता है —

बारि सुमात सरय कबि कह्यो । अवधुन घाठ तथा वर रख्यो ॥

साहस अनृत अपमता माया । मय भविबेक असीब भदामा ॥

रिपु कर रूप सकस तै गावा । अति बिसाल भय मोहि सुनावा ॥

तो इसमें नारी की निन्दा नहीं अपितु मतिअघट व्यक्ति की अपनी हीनता की तिलमिलाहट है । इसका बाप तुमसी को बेना उपयुक्त नहीं । तुमसी ने तो राजस बंध की नारियों की भी प्रशंसा की है ।

रामायण की कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं जिनके कारण तुमसी को नारी निन्दक कहा जाता है । जैसे 'महज अपावनि नारि पति सेवत सुमपति सहति, अपका भिमि स्वर्तत्र होहि बिसरहि नारी' और 'दोल नंवार गुरुपगु नारी' आदि । इन पंक्तियों को पृथक् रूप से न देखकर प्रसंग के अनुसार इन पर ध्यान दिया जाय तो इनका समाधान स्वतः हो जाता है । फिर भी तुमसी द्वारा इस प्रकार का वर्णन यदि आपत्तिजनक हो तो तत्कालीन परिस्थितियों की सम्भिरता भी इस प्रकार के वर्णनों के लिय बतलवायी है । लृप्तकी के समय में समाज का दर्जा बहुत बिगड़ चुका था । वैदिक कठन धर्म सीमा पर था । स्त्रियों बुराचारिणी होने लगी

यी । पतिव्रताओं का ध्यान घट रहा था और परस्त्रियों के प्रति पुरुषों का लगाव बढ़ने लगा था । वर्णधर्म धर्म छोड़कर विवाह किये जाते थे जिससे वर्णसंस्करण धर्म रही थी । समाज की ऐसी दुर्दशा से तुलसी को धारमा बढ़ी व्यथित थी । वे मर्यादा प्रेमी थे । जीवन में परिवार में समाज में सब जगह वे मर्यादा की रक्षा करना मनुष्य का परम कर्तव्य मानते थे । उनकी दृष्टि में जाहना से कर्तव्य सबैक बढ़ा था । घट कुट्ट पुरुष और दुराचारिणी स्त्रियों के चरित्रों की टाड़ना वे प्रावस्थक ही नहीं अनिवार्य मानकर बसे हैं । समाज में सती और पतिता दोनों प्रकार की नारियों के प्रति तुलसी ने अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है । सती नारी की पूजा और पशु नारी की टाड़ना से समाज की नैतिकता की रक्षा हो सकती है इस मानने में किसी को शायद आपत्ति नहीं होगी । कैकेयी की दुर्दृष्टि पर कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति है जिसे मोह न घाता हो ? अपने हठ में उसने परिवार का बिनाश किया । यदि तुलसी फिर भी कैकेयी का पक्ष लेकर उसके हृदय की सराहना करते तो क्या की एकरसता में धर्मका बाधा उपस्थित हो जाती । रामायण के पाठक प्रबन्ध प्रमुख करते हैं कि भरत के द्वारा कैकेयी और मन्त्रा को कहे गये कठोर वचनों से हृदय को कैसी मुक्ति प्राप्त होती है । जबकि नारीतुलना सहज मन्त्रा और मर्यादा को त्यागकर भ्रमण और राम को अपने साथ विवाह के लिये विवश करती हुई शूर्पणखा की नाक कटती देख किसी प्रसन्नता होती है । स्त्रियों के ऐसे कृत्य निन्दनीय हैं, और वे सबैक टाड़ना की अधिकारी हैं । उनके स्वतन्त्र कर्म समाज के लिये बाधक सिद्ध हो सकते हैं । तुलसी के मत में ऐसी स्त्रियों को स्वतन्त्रता देना उचित नहीं । नारी की दृष्टि से इस बात पर विचार न करके सामाजिक दृष्टि की दृष्टि से नारी की स्वतन्त्रता पर विचार कीजिये तो किसी सीमा तक तुलसी की बात में बहुत यथार्थता दिखाई देगी ।

साधन यह कि तुलसी न केवल भरत से और न केवल कवि । वे एक ऐसे साहित्य-गुरु थे जिन्होंने जीवन के व्यापक तत्त्वों को दृष्टि में

रखकर एक घाबरी मानव समाज का स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत करने का भरपूर प्रयास किया है । इस दृष्टि से तुमसी का नारी संबंधी दृष्टिकोण बहुत व्यापक और भारतीय आदर्श सिद्ध हुए हैं । उसमें नारी के देवी और शक्ति दोनों रूपों की विवेचना है । दोनों को ध्यान में रखकर ही तुमसी की नारी भावना की विवेचना करना उपयुक्त है ।

‘साकेत’ की उर्मिला

‘साकेत’ महाकवि मैथिलीचरण गुप्त की महत्वपूर्ण इति है। ‘साकेत’ की महत्ता इसलिये अधिक नहीं है कि उसमें कोई उत्कृष्ट कोटि की काव्य कला है अपितु इसलिये है कि उसमें कवि ने दुर्गों से उपेक्षित नारीत्व और मातृत्व को युग की जाग्रत भावनाओं के अनुकूल स्थान प्रदान किया है। ‘साकेत’ की कथा तुलसी की रामायण की भाँति सीता और राम की ही कथा है किन्तु इसमें कवि ने सीता राम के पौरव बान की अपेक्षा उर्मिला की त्याग-तपस्या और विरह-वेदना का अधिक विस्तार से वर्णन किया है। रामायण में वहाँ हम केवल इतना जानते हैं कि सक्ष्मण की पत्नी का नाम उर्मिला था वहाँ ‘साकेत’ में उर्मिला ही कथा की केन्द्र बिन्दु है। वही हमारी बच्चा और सहानुभूति का आधार है। ‘साकेत’ में राम के वन गमन पर हम उसने इतित नहीं होते बितने कि राम के साथ वन जाने के सिधे उद्यत सक्ष्मण को देखकर सीता के कान्धे पर फर फर घाँसू बहाती हुई उर्मिला की कफ़ल और विवश बच्चा पर। राम पिता की आज्ञा से वन गये सीता पति ही पत्नी की पति हैं का लक्ष्य लेकर राम के साथ गई और सक्ष्मण राम की सेवा में ही जीवन की सफलता मानकर वन गये पर उर्मिला बच्ची केवल पति की प्रसन्नता के लिये १४ वर्ष तक महल में रखी हुई भी तपस्विनी बनी रही। यह त्याग नहीं त्याग की चरम सीमा है। उर्मिला की तपस्या राम सक्ष्मण और सीता के त्याग से कम महत्वपूर्ण नहीं है। कवि की सहृदयता ने इसका महत्व समझा है वर राम के मुँह से कहाया है —

तू तो सहजगचारिणी के भी ऊपर !
धर्म स्थापन किया माय्यसालिनि इस भूपर ॥

पति के साथ रहकर पति के जरूरतों की सेवा ही एक मात्र पतिव्रत धर्म नहीं है, अपितु पति की प्रसन्नता के लिये उसके मनोनुकूल व्यवहार करना उससे भी बड़ा धर्म है। उर्मिला ने उसी महान् धर्म का पालन किया। लक्ष्मण चाहते थे —

यदि तুম भी प्रसन्न होगी, तो संकोच छोड़ दोगी।

प्रभुवर बाधा पावये छोड़ मुझे भी जाने दे।

रहो रहो हे प्रिये रहो, यह भी मेरे लिये सहो।

लक्ष्मण के इस संकेत भाव पर उर्मिला ने अपना कर्तव्य निर्धारित कर लिया और मुक्त से मन की एक बात नहीं कही। वह धन्यवर ही धन्यवर अपने मन को समझाती रही —

हे मन ! तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन।

तू विकार से पूर्ण न हो छोड़ भार से जूझ न हो।

भ्रातृ स्नेह मुझा बरसे, भू पर स्वर्ग भाव सरसे।

यदि उर्मिला के त्याग से संसार में भ्रातृ-स्नेह का धावर्ध उपस्थित हो संसार स्वर्ग बने, पति की प्रसन्नता हो तो उर्मिला इस विमोह के लिये सहर्ष तैयार है। भारतीय नारी के जीवन का यही धारण है। सीता पति के साथ बन गई इनलिये पतिव्रताओं की धिरोमति है तो उर्मिला ने पति के लिये अपने हास-विहास जीवन-मुक्त सब का परि त्याग करके उपस्थिती का जीवन व्यतीत किया अतः वह सीता से भी अधिक महान् है।

सीता ने अपना भाग निभा, पर हमने वह भी त्याग दिया।

गुप्त जी ने नारी की हम महानता का मुझ झाँका है अतः वे सीता के साथ बन न जाकर अयोध्या में उर्मिला के बिरह-रक्त जीवन के साथ धनु बहाते दिखाई देते हैं।

उर्मिला के चरित्र में गुप्त जी ने भारतीय पुरातन संस्कृति और नवीन धार्मिक संस्कृति के सिद्धांतों का समन्वय करके एक नवीन नारी

स्वरूप धर्मिष्ठ किवा है। भारतीय पुरातन सस्कृति में सहनशीलता कर्तव्यपरायणता मर्यादापालन आत्मसमर्पण-आदि बातों की प्रधानता है। नारी जीवन मानो इन सबका मूर्तिमान् स्वरूप है। उमिला को प्रारम्भ में हम सकलण के साथ वार्ताभाष म रत पाते हैं। वह अपने बाकचातुर्भ से लक्ष्मण को विमुख कर लेती है। उनका साम्प्रत्य जीवन बड़ा ही सुखमय है किन्तु अचस्र आते ही वह मीन बनकर परिवार के लिये पति के लिये संसार के लिये सब कुछ त्याग देती है। पति के जाने के बाद उसके मन में रह रह कर एक हक सी उठती है कि वह उनके जाने के समय रो क्यों पड़ी बेहोश होकर गिर क्यों पड़ी वह क्यों न कह सकी -

हे नाथ ! साप दो आठा का बस रहे मुझे उस आठा का ।

है प्रेम स्वयं कर्तव्य बड़ा जो नीच रहा है तुम्हें लड़ा ।

मह आतृ स्नेह न ज्ञा हो लोयों के लिये नमूना हो ।

उमिला जानती है कि जो होना था वह तो हो चुका अब तो उसके जीवन का एकमात्र अवलम्ब है वन म पति द्वारा उसकी स्मृति -

आराध्य भुग के सोने पर, निस्तब्ध निधा के होने पर

तुम याद करोगे मुझे कभी तो बस फिर मैं पा चुकी सभी ।

अवलम्ब चाहे उसने इंक सिधा हो किन्तु भामन मन बड़ा हठी होता है। भास समझने पर भी उसकी बाबडोर हाथ से छूट जाती है। ऐसी स्थिति उमिला के जीवन में धनेक बार आती है वह इस दुःखमय विमोही जीवन पर कभी कभी बड़ी नीच उठती है और कहती है -

मही आठा है इस मन में

छोड़ भाम-वन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में ।

और कभी बँकेयी की राग्यावादा को-बिसने यह सब उल्लास क्रिया-बनकार उठती है -

हम राज्य लिये मरने हैं ।

प्रभु को निष्ठावान मित्रा मुझको कारागार ।

मृत्यु बख्त उन तात को राज्य तुम्हें भिन्नकार ॥

कभी अपनी विवशता पर दुःखी होती हुई सती मे कहती है —

स्वप्न ! रोता है मेरा नाम

प्रिय तक नहीं पहुँच पाती है उसकी कोई तान ।

सबि बिछर गई हैं कलियाँ ।

कहाँ गया प्रिय भुका भुकी में करके वे रंवरनियाँ ।

किन्तु इस घसड़ा हुआ मैं समिता कर्तव्य पूरा गई हो ऐसी बात नहीं है,
स्वप्न मैं कभी कभी महमल को अपने पास लाइ देताकर तुरन्त
पुछती है —

प्रभु कहाँ ? कहाँ किन्तु अपना ?

कि जिनके लिये वा मुझे तमा

बहु नहीं फिरे ? क्या तुम्हीं फिरे ?

हम निरे बहो ! तो मिने-गिरे ।

यदि बीरवम और बड़ो बहन सीता तुम्हारे साथ नहीं आई तो क्या तुम्हें
उन्होंने ताराज होकर भेज दिया भयवा तुम मुझे बीम जानकर सीन
भाये ? तब तो बड़ा भारी धनर्ष हुआ —

बिक ! क्या हुई समिता-व्यथा ।

अभी समय है काभा नीट जायो । इस प्रकार अपना बत मच म करो —

तुम बती रहा मैं सती रहूँ ।

इस प्रकार विधोय के भी समिता अपना कर्तव्य जसी भाँति समझती
है । निबन्ध में महमल उगाड़ी व्योम दोगु धनस्था देखकर मन ही मन
बड़े दुःखी हुआ है और कामा तो भोगने हुए उसके पीरा पर निर पग्न है ।
वे उसी महता स्वीकार करते हुए बहते हैं —

बन में तनिक तपस्या करके बमने हो मुझको निज योग्य
भामी की भूमिनी तुम मेरे धर्म नहीं केवल उपभोग्य ।

इसके पश्चात् उमिला के जीवन में एक और दृश्य आता है वह है
महमद को दक्षिण लगना । जिस समय उसने यह समाचार सुना वह
धीर सभाणी तुरन्त बुद्ध में जाने के लिये कटिबद्ध हो जाती है । वह सैनिकों
को तलकाएँ हुए कहती है —

ठहरो यह मैं जन्म कीति सी आगे-आगे
मोमें अपने विषम कर्म-फल प्रथम आनागे ।

मरत और सन्तुष्ट के समझाने पर भी वह घर में रह कर भामू बहाने
की अपेक्षा कुछ भूमि में जाकर सैनिकों की सेवा करना अपना परम
कृतव्य समझ उनसे कहती है—

अपने हाथों पाव मुझारे थोड़ीसी मैं
पाणी दूगी तुम्हें न पल भर सोऊंगी मैं ।
गा अपनी की विजय वरों पर रोऊंगी मैं ।

१४ वर्ष व्यतीत होने पर महमद घर लौटते हैं । उमिला का जीवन बल
बुझा है—जीवन का आग्न समाप्त हो गया । अब उसे शू गार प्रण्ये नहीं
लगते । अब वह रानी नहीं पति की दासी मात्र रह गई है—

बन की तब की आति उमिला सनकी रानी ।
वह बरसों की बात धाम हो गई पुरानी ॥
अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी ।
मैं सासन की नहीं धाम सेवा की प्यासी ॥

इस प्रकार उमिला के त्यागमय व्यक्तित्व को अक्षिप्त करके कवि मैथिली
सरण गुप्त ने अनेकित नारी जाति को गौरव प्रदान किया है ।

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में नारी का स्वरूप

पायसी के 'परमावत' और दुससी के 'रामचरित-मानस' जैसे सर्वांग पूर्ण महाकाव्यों के पदवात् हिन्दी में प्रबन्ध काव्यों की परम्परा बहुत काल तक मुप्त थी रही। मक्ति-युग के बाद रीति-युग की चिन्तनधारा १०० वर्षों तक मुक्त काव्य में ही प्रवाहित होती रही। उत्तरार्ध १९वीं सताब्दी के उत्तरार्ध में हिन्दी अपने पुनर्नये परिवारों को स्थापक नवीन रूप में व्यवस्थित करने आई। किन्तु इस युग में साहित्यकारों के समक्ष इतनी विविध समस्याएँ थीं कि वे प्रबन्ध काव्यों की रचना की ओर ध्यान न दे सके। 'कमल' आदिकाल के बाद महाकाव्यों की रचना २०वीं सताब्दी के द्वितीय दशक से प्रारम्भ हुई। आधुनिक युग में 'साकेत' 'प्रियप्रवास' 'बदेही' 'बनवास' 'कामायनी' 'मूरखों' 'साकेत-सन्त' 'सिद्धार्थ' 'कृष्णायन' 'शार्वती' आदि अनेक महाकाव्य प्रकाशित हुए।

यदि हम यह कि आधुनिक युग के अधिकोश महाकाव्य नायिका प्रधान है तो आधुनिक न होगी क्योंकि नियम और नामकरण की दृष्टि से यही सिद्ध होता है। 'साकेत' में उज्ज्वला का और 'प्रिय-प्रवास' में राधा का व्यक्तित्व राम और कृष्ण की अपेक्षा अधिक महत्ता मिले हुए है। बदेही बनवास कामायनी 'मूरखों', 'शार्वती' आदि अपने नाम से ही प्रकट करते हैं कि वे नारीप्रधान महाकाव्य हैं। इन महाकाव्यकारों ने नारी का अपने काव्य की प्रमुख नायिका बनाकर आधुनिक युग में नारी के स्वल्प परिवर्तन तथा स्वनृत्य व्यक्तित्व की प्रयोगशाला की है। मुझे से शक्ति उपलब्ध और पीड़ित नारी का स्वल्प आधुनिक महाकाव्यों में अपने समस्त कामुक को धारण रखते, निर्बल और पवित्र रूप में

प्रकट हुआ है। मैमिमीकरण गुण में उमिमा मधोबरा विपुता तथा 'हरिष्ठीय' में परिवर्तता बनेही जैसी महिमामयी नारियों के उपेक्षित व्यक्तित्व को काव्य का विषय बनाकर नारी के त्याग और तपस्या का सच्चा मूल्यांकन किया है।

साहित्य में नारी का स्वल्प युग की धार्मिक सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक व्यवस्थाओं के अनुकूल गत्यात्मक रहा है।

भक्ति-युग और रीति-युग में नारी विषयक कवियों की चारणा इसके प्रमाण हैं। "तुम तिरिया मतिहीन तुम्हारी मूरख सो बो मरै बर नारी, 'अबबा' नौकी मति सेह रमनी की मति सेह मति" जैसी पंक्तियाँ तत्कालीन नारी विषयक चारणा को स्पष्ट करती हैं। किन्तु वर्तमान युग में समाज के परिवर्तन के साथ नारी का स्वल्प भी परिवर्तित हो गया है। आज की नारी पुरुष की मुखापेक्षी नहीं है, उसका व्यक्तित्व स्वतन्त्र है। पुत्री पत्नी और माता के रूप में नारी का अस्तित्व समाज की संस्कृति और सभ्यता का पोषक है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह पुरुष की सहयोगिनी है और कहीं कहीं तो पुरुष की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है। नारी पुरुष की उच्छ्वसवता हिंसा स्वार्थ और पशुता को नष्ट करके मानवी सभ्यता की रक्षा करती है। 'कामाक्षी' की भड्डा मनु की संरक्षिका सहायिका तथा मार्ग निर्देशिका है। मनु जब जब अपने कलरवामित्यों से स्वस्थित होते हैं तभी भड्डा अपने प्रभौकिक गुणों से जनका मार्गप्रवर्धन करती है। मनु जब निराशा के गहन गर्त में डूबे जीवन को भार समझते हैं तभी भड्डा बसा समता मञ्जुरिमा और प्रगाध विषवास का उपहार देकर अपनी अमृतमयी बाणी से मनु के हृदय में आशा का संचार करती हुई कहती है -

घरे ! तुम इतने हुए अधीर
हार बैठे जीवन का धन
जीतते घर कर बिछको धीर।

घीर यह क्या तुम सुमते नहीं
 बिबाता का संसत बरबान ।
 सक्तिहासी हो बिबयी बनो,
 विश्व में गुन रहा यह गान ॥

इस भाँति 'कामायनी' की यज्ञा न केवल मनु को अपितु समस्त संतप्त और विपाद्यमय मानव जगत् को धीतमता प्रदान करने वाली है । कविवर बचसंकर प्रसाद ने नारी के गुणों पर मुग्ध होकर मनु द्वारा पुरुष मान की ओर से आभार प्रदर्शन करते हुए कहा है—

तुम प्रजल बर्षा सुहृद की और स्नेह की मधु रजनी ।
 बिर अमृत भीषण यदि बा तो तुम उसमें संतोष बनी ॥
 कितना है सपकार तुम्हारा, धामिष्ठ मेरा प्रलुप हुआ
 कितना आधारी हूँ इतना सविद्यन मम हृदय हुआ ।

'पार्वती' महाकाव्य के कवि रामानन्द तिलारी ने नारी के विषय पौरव का बड़ा ही मध्य स्वरूप संक्षिप्त किया है । जिस समय नाटिकेय देवताओं की रक्षा करने के निमित्त इन्द्रलोक में जाते हैं, तब देवताओं को जड़ बोधन करते हुए कहते हैं कि किसी देश की संस्कृति के नाश का मूल कारण नारी का अपमान होता है । नारी को बन्धन में रखकर स्वयं पुरुष स्वतंत्र नहीं हो सकता । नारी को बलता बनाकर पुरुष भी निर्बल बना रहेगा—उनके विचार में—

है संस्कृति की शक्ति सर्वदा संस्कृत नारी”

नारी का सौम्य रीति-भुगीन कवियों ने बाह्य ज्वाला के स्वरूप में चित्रित किया था किन्तु वर्तमान महाकाव्यों में नारी का सौम्य पुरुष का विनाश और मानता की अग्नि में न लपकाकर धीतसत्ता तथा आह्लाद प्रदान करने वाला है । नारी के बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य का चित्र 'पार्वती' के कवि ने निम्न शब्दों में संक्षिप्त किया है—

बाएरी के मंगल भीलों में ब्रह्मा मुकटित होते ।
 पुष्प पयोधर के सागर में बिष्णु समातन होते ।
 तेज धीर तप से शंकर को देती रूप भवानी ।
 बिर भीवन से भय इन्द्र को करती नित कस्याणी ।

प्राधुनिक महाकाव्यकारों ने नारी के पत्नीरूप धीर मातृरूप को पूर्ण प्रतिष्ठा प्रदान की है । नवमणु भक्ति के आदेश में अपनी नव विवाहिता पत्नी को छोड़कर १४ वर्ष के लिये राम के साथ बन बसे गये । नवमणु की यह भक्ति किसी युग में भले ही प्रशंसा का विषय रही हो किन्तु साकेत का कवि पत्नी के प्रति नवमणु के इस अपराध को सहन नहीं कर सका है । उसने नवमणु को इस परिस्थिति का समुदाप करते हुए लिखा है । जिस समय नवमणु पंचवटी में “कोणस्थ उमिता रेखा यह काना है बा लेप उसी की छाया” का अवलोकन करते हैं तो हठमूढ़ होकर उमिता के पैरों पर बिर पड़ते हैं और कहते हैं -

बन में छनिक उपस्था करके बगन को मुझको निज योध्य ।

भाभी की भविनी तुम मेरे धर्म नहीं कबल तप भाव्य ।

मातृरूप में कैकेयी के अपराध का प्रक्षालन साकेत की नवीनता है । सन्तान के प्रेम में पायल माँ क्या नहीं कर सकती ? राम की जाति के साथ नारी के अग्न्य रूप भी काम्यों में दृष्टिबोधर होते हैं । सूर की गोपियाँ कृष्ण के वियोग में निराश्रित आँसु बरसाया करती हैं और सखियों से मधुवन के रूप भरा करती हैं किन्तु ‘प्रिय प्रवास’ में राधा तथा धन्य योपियाँ अपने प्रिय के चर न लौटने पर समाज सेविका बन जाती हैं । राधा कुछ रोपी रीन हीन निर्बल विधवा जनों की सेवा करके अपना दुःख भुल जाती है । राधा के साथ धन्य योपियाँ भी ब्रजभूमि में शांति का विस्तार करती दिखाई देती हैं । यह नारी-वृक्ष विश्व का आराध्य बन जाता है । ‘साकेत’ की सीता अपने अवनकाश के अश्रुओं में आसपास की कोस भील किण्ठ कल्याणों की काटना बुनना सिखाती है ।

यदि बरबर पड़े तो नारी अपनी शक्ति से बड़े बड़े धर्म्याचारों का समर करके बिम्ब शान्ति स्थापित करने में भी समर्थ है। तारकासुर के आमाचारों से साध बेस पीड़ित था। 'तारक-वध' महाकाव्य में वररव पुत्री शान्ता कमर कसकर उसकी सक्तियों का ह्रास करने में तत्पर है। तारकासुर द्वारा पकड़ी जाने पर शान्ता वीर लज्जाली के स्वर में कहती है -

सेस मात्र भी मुझे नहीं भय है। दामन पति लेय।
 सूर्यवंश की कन्या हूँ मैं अमित पराक्रम मेय।
 निपट अकेली होकर भी हूँ रखती शक्ति अजेय।
 बावस बीच बसी बिजली सी धनसमयी धनुमेय।

इसलिए नरेशों पर राजा बरबर के आक्रमणों का साथ उनकी महा पणियों भी युद्ध में उठकर सामना करती हैं। यदा ही कदास बनकर महापणियों बिप से जुड़े हुए बाखों द्वारा शत्रु दल में हाहाकार मचा देती हैं। इसी प्रकार हनुमान द्वारा लंका में युद्ध का समाचार सुनकर 'साकेत' की राणियों युद्ध में जान को तत्पर हो जाती हैं। उर्मिला युद्ध क्षेत्र में जाकर वीरों के पावों को जोमे और उनकी रक्षामाज करने में अपना अहोमाव्य समझती है। वह कहती है -

अपने हाथों जान तुम्हारे फोड़नी मैं,
 पानी हूँ की तुम्हें न पत भर सोझनी मैं।

इस प्रकार प्रापुनिक महाकाव्यों में नारी के विविध आदर्श स्वरूपों का दर्शन हुआ है। यद्यपि मुक्तक काव्यों में तथा नारी विषयक कविताओं में नारी के उस असंग्रह के भी दर्शन होते हैं जो प्रापुनिक सम्पदा और वातावरण के परिणाम हैं जैसे 'पल्ल' की 'प्रापुनिका' और निरकार देव संवक का 'नारी का शान्ति दीप्त' परन्तु महाकाव्यों में सर्वत्र नारी के धर्म स्वरूप की ही व्याख्या हुई है। नारी का व्यक्तित्व कवियों के अनुसार पुरुषों से महान् और शीत तथा शक्ति का प्रतीक है।

भारी को पुरुष का बन्धन और माया का स्वरूप मानने वाली विचार
धारा का इस युग के कवियों ने तीव्र प्रतिकार किया है। 'नम नरेज'
महाकाव्य के कवि प्रतापनारायण कविरत्न ने पत्नी को पति का सच्चा
मित्र और सहचरिणी माना है। समयन्ती नम को सम्बोधित करके
कहती है -

॥ मैं माया घन तुम्हारा मेने बिना कभी कुछ काय ।

कर सकते तुम सही कही पर सब बहती हूँ हे छविधाम ।

'वैदेही जनबास' में सीता जब जन जाने को उद्यत हैं तब कौमत्या
बेहमा से व्याकुल होकर कहती हैं कि 'तुम राम के लिये शक्ति स्वरूप थी
उसका पौंस्य तुम्हीं पर आधित था तुम्हीं उसकी सिद्धिबायिनी थी
सुहिणी थी तुम्हारे लसे जाने पर उसका जीवन किस प्रकार कटेगा ?'

इस भाँति प्राचुरिक महाकाव्यों में भारी बेस समाज और राष्ट्र के
लिये भगवत्पादिकी मन्त्रांगी के रूप में विवित हुई है। पुरी पत्नी
माता भगिनी सभी रूपों में बहु संस्कृति की सरलिका और विरज की
आराध्या है। जीवन के सभी क्षेत्रों में उसका अबाध प्रवेश है।



‘मीरा’ महाकाव्य की मीरा

राजस्थान की मरभूमि में भक्ति रस की धमर सुधा बरसाने वाली प्रसिद्ध मल्ल कवि मीरा के बीच भारत के काने कोने में बड़े भक्तिभाव और भक्ता से पामे जाते हैं। लोग मीरा को गिरधर नामर के चरणों में धातम-विधोर होकर माचने और गाने वाली भक्ति के रूप में ही अधिक जानते हैं। उनके बाल्यकाल जीवन वैष्णवभावस्था के विषय में सर्वसाधारण जनता कम जानती है। ‘बावरी’ कुसगाती’ जैसे सम्बोधनों से सञ्चित किये जाने पर भी मीरा जन-जम के हृदय में भक्ति रस उत्पन्न करने में सफल हुई। इनका रहस्य उनके जीवन में ही प्रकट निहित है।

राजस्थान के व्यातिप्राप्त कवि श्री परमेश्वर द्विवेद ने ‘मीरा’ महाकाव्य में मीरा की वास्तविकता तारण्य और वैष्णवभावस्था का बड़ा मायुक्त और मार्मिक वर्णन किया है। भक्ति के अक्षर मीरा जन्म से ही लेकर उत्पन्न हुई थी। वे अक्षर अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर पनप उठी। किसी दूसरे की शादी विवाह का सम्मान देखकर समी छोटे बच्चों को अपनी दादी की जिजाया हाँकी है और प्रायः वे माता-पिता में अपने मन के प्रेम बड़े माने पण्यों में पुष्ट बैठते हैं और माता-पिता उन्हें दस्ते नीचे उतार देकर बहुधा रिवा करते हैं। किन्तु मीरा के जीवन में इस प्रकार की घटना घमिक्त पत्थर को सक्षीर बन गई। बचपन ही एक साधारण सी बात ने मीरा को बहु रास्ता दिखाया जो उनके जीवन निर्माण में पूर्ण सहायक सिद्ध हुआ। अपने पड़ोस के घर में किसी घर को प्रायः देखकर मीरा ने बड़ी उत्पुङ्गव ने अपनी माँ से पूछा -

है कीन ? नहीं माँ ? मेरा घर ?

मैं किनकी पुनहिन बनी घर -

माँ ने उमका मन बहुमाने के लिये कह दिया कि तुम्हारा घर 'गोपल सर्वोत्तर' है। उस इसी समय से इस अज्ञात प्रियतम के प्रति मीरा के हृदय में अपार भक्ति और प्रेम जागृत हो उठा। इसी दिन से वह गोपाल की देखने और पाने के लिये व्याकुल हो उठी वह माँ से पूछती —

माँ ! मैं पावनक नटवर लाकर ।

ये कौन कहाँ है इनका घर ?

माँ इतनी छोटी सी बालिका की लगन पर आश्चर्यचकित थी। उन्होंने अपनी बालिका की जिज्ञासा दान्त करने के लिये कृष्ण के विविध रूपों का वर्णन किया और बताया कि —

रहते नागर बैकुंठ नाम राधा के साथ सदा नत्तान ।

साधते भक्त के सभी काम पल प्रतिपल ।

भावीकथ एक साधु कृष्ण की मूर्ति लेकर इनके घर आया। इस मूर्ति को देखकर मीरा को पूरा विश्वास हो गया कि यही श्रीकृष्ण हैं। उस मूर्ति में मीरा के प्राण बस गये और जब तक उस मूर्ति को उन्होंने प्राप्त न कर लिया तब तक खाना पीना सब त्याग दिया। साधु मीरा की अतन्मय भक्ति पर मुग्ध हो गया और उन्हें वह मूर्ति दे दिया। जब मीरा के खेल-कूद के साथी बही कृष्ण समझाने लग गये। वह उन्हें मोम समझती भ्रमन लगाती पूजा करती और नये नये मीठ पाटी। मीरा के जीवन की यह घटना उनके अन्तिम समय तक हृदय पर पटक पर अंकित रही और इसीके आधार और विश्वास पर जीवन के कठिन से कठिन संकटों को भी उन्होंने हँस हँस कर सहन किया।

राजस्थान के राजबाहों में कन्या का ब्रह्म अभिषेक माना जाता था। क्योंकि —

एक मात्र कन्या विवाह में बिक जाता है हरा मरु घर ।

सब स्नाह्य कर देने पर भी घर वालों को स्वाद नहीं पर ॥

करके धामूपण ब्रह्म में जीवन व्यर्थ जमा जाता है ।

कन्या बाले को पग पग पर, बारंबार छमा जाता है ॥

इसी कारणों से मीरा के पिता उनकी ओर अधिक ध्यान न देते थे । माँ के बहुत समझाने पर वे कह दिया करते थे —

क्या लड़की भी घरे काम की ?

बीड पगये घर की धानिर

केवल चिता मुबह घाम की ।

पिता का यह उपेक्षा जब मीरा से छिपा न बा । वह अपनी माँ से ही अधिक प्यार करती थी किन्तु ईश्वर से मीरा की माता भी उन्हें असह्य भवत्वा में छोड़कर परमोक विचार गई । बेचारी मीरा का जीवन दुःख ही बना । माते जागते वह माँ की पुकार करती रहती —

एक 'मा' 'मा' का कइया पीत

बही ना प्रतिपल बारबार ।

भान्त निद्रा में नीरव धन

हो गई थी वह क्या उपचार ।

मीरा के इस मूने जीवन में दुष्ण की मूर्ति और भी अधिक आकर्षण का केन्द्र बन गई । वह अपने भाई जयमल और अन्य सहोदरों के साथ दुष्ण-मोदियों की धार मिथानी के धल लैसती बनी 'करो बाकर मिरासीनाम' का गीत गाती और कभी अपने दादाजी से पूछती —

बड़ा है क्या, कंठा बाकर ?

बड़ा का क्या आकार प्रकार ?

बड़ा में ही होना जब मीन ।

व्यर्थ है तब आचार विचार ।

दादाजी उसे नामा प्रकार से समझाते पर उन नहीं धारिता की बुद्धि में सब बात हीन से नहीं बैठ पाती और वह मन ही मन दम प्रकार के प्रदनों में डपटी रहती :-

सोचती क्यों होता है जन्म ?
 मृत्यु क्यों ? कहाँ पूर्ण भवदान ?
 सृष्टि क्या है ? क्या है जन बीज ?
 नहीं या है ? क्या है भवदान् ?

तरली होने पर मीरा के हृदय में कुछ परिवर्तन हुआ । अब अपनी विवाहिता सभी सहेलियों से बात भीत करके मैं उसे आनन्द देने लगा —

स्वगुरुजन से पीहर घाटी
 बितनी भी नव कुलहिम परिचित ।
 उनके सम्पर्क में वह नित
 प्रिय की अनुभूतिमयी बार्हे ।
 धुन धुन कर घबिरन गुल पाटी ।

अपने घर में गुरुजी की कामना में वह पार्वती का पूजन करती कार्तिक में प्रातः स्नान करती मंदिर में दीप जलाती । सखियाँ उससे कवितार्जुन सुनती बीणा बजवाती और उसे गवाती ।

सखियाँ मीरा से हँसी मजाक करती और कहती कि इनके घर तो कामे हैं । वे तो दुनियाँ से निरासी हैं इन्हे दुनियाँ में कोई मतलब नहीं है केवल —

नटवर नागर मोहन गिरबर
 हैं जन्म जन्म के इनके घर ।
 यह तो जन पर ही भट्ट है ।

धीरे-धीरे वह स्वर्ण दिन भी आया जब मीरा विवाहित होकर अपनी समुदाय बिधा हुई । मातृहीन बालिका समुदाय आते समय फूट फूट कर रो रही थी । सखियाँ उन्हें साहस बंधा रही थी । समुदाय पहुँच कर वह बड़ का पूर्ण स्वागत हुआ । किन्तु 'गिरबर नागर' के निजे मीरा का प्रेम यहाँ उपहास का विषय बन गया । बेचारी मीरा धमी चुप थी । जीवन की घराब से बेहोश मीरा के पति कुबर भीमराज भीतिक भोग-विभासों में मस्त थे । उनके जीवन का सिद्धांत था —

घोर मृत्तो जीवन के जप में मल तप बाप नहीं है ।
 बम नहीं है कर्म नहीं है ईश्वर, पाप नहीं है ॥
 धाधो धाधो, भों न गेंधाधो थोड़े से जीवन को ।
 थोड़कसा जायेगा यों ही एक दिवस इस तन का ॥

मृत्तने में तो ये बातें धधधो लगती थी पर मीरा का जीवन का
 धारम कुछ दूसरा था । वह भौतिक जीवन को नरकर समझती थी घट-
 बिरतन सत्य को पामे के लिये व्यग्र रहती थी । वह कहती थी -

यदि भौतिकता ही जीवन था, नर क्यों मर जाता है,
 तब कुछ साधन रहते फिर क्यों ? सौट नहीं पाता है ।
 हमने तो जीवन के भागी सब रोते दसे हैं
 घोर अन्त में आरिभक मृत्त में सय हाथे देखे हैं ।

मीरा तो 'गिरवर बोपाम' की ही इस दुनिया से ऊँचा मानती थी
 घोर जन्हीं का एक मात्र सत्य समझती थी । एक दिन मीरा के पति ने
 मीरा से धिकार चलने का आग्रह किया पर मीरा किसी इयावती गारी
 इन हत्या को कैसे सहन कर सकती थी । उसने पति को नाना प्रकार से
 समझाया पर उनकी समझ में एक बात न धाई । वह कहने लग कि
 सारा संसार ही एक दूसरे की हत्या में लीन है फिर हम ही क्यों इससे
 बच कर दूर रहें ?

मीरा ने पुनः समझाया कि -

मह मुरा मांस का सम्मिश्रण व्यभिचार बढ़ाया करता है ।
 स्त्री का लीला कुछ दुकाओं पर जिससे भुट जाया करता है ॥
 मीरा के इन उपदेशों पर पति महोदय भस्मा उठे घोर बासे -
 बारी तो नर की बागी है नर के दुकाओं पर पसली है ।
 नर क इधित पर जीवन भर बठपुतली की ज्यों चमकी है ॥

इतनी बात सुनकर धमियानिमी मीरा का स्वाभिमान जाग उठा ।
 समझ नेत्र रोष से जाल हो गये । वह बोली -

नारी जिसके नेमब बंध पर, सब काम बयलू के चलते हैं ।

पर घब-पतन उसका कितना उसको नर कामी छुसते हैं ॥

यह जोन से बहूँ से उठ कर चल पड़ी पति ने हाथ पकड़ लिया पर मीरा अपना ठिरस्कार सहन न कर सकी । उसने नारी की पत्ति का पूर्ण बिस्तार से बर्णन किया और पति का समझा दिया कि नारी को वासी समझना पुरुष की बड़ी भारी चुन है ।

कवि ने मीरा के जीवन का यह घमिलव रूप उपस्थितकर नारी प्रथम प्राकृतिक हिंसी महाकाव्यों की शृंखला में एक और कड़ी जोड़ दी है ।



महादेवी वर्मा

धार्मिक हिन्दी काव्य में श्रीमती महादेवी वर्मा का बड़ा ऊँचा स्थान है। हिन्दी की 'आत्मबारी और रहस्यबारी' काव्य चार में घापका नाम सर्वाधिक महत्व रखता है क्योंकि इन्होंने प्रमुख रूप से रहस्यबारी काव्य की रचना की है। रहस्यवाद का मोटे रूप में तात्पर्य है निर्गुण ब्रह्म से जीवार्त्मा का आत्म निवेदन। इसमें जीव परमात्मा से विविध मौकिक संबंध स्थापित कर उससे आत्म निवेदन करता है। कभी ईश्वर को माता बनाकर कभी पिता स्थायी या सच्चा और प्रियतम बनाकर। महादेवी वर्मा ने ईश्वर को प्रियतम मानकर अपने हृदय की व्याख्या काव्य में व्यक्त की है। रहस्यवाद में ईश्वर का प्रियतम रूप ही सबसे अधिक मधुर होता है। महादेवीजी की 'बीहार' 'रविम' 'भीरवा' 'साध्वीत' और 'दीपजिष्ठा' चारों प्रसिद्ध रचनाओं में बेचना बिरह और पीड़ा का मधुर तम भाव व्यक्त हुए हैं। इनकी कविताओं में पीड़ा का ऐसा भद्मभूत साम्राज्य है कि पाठक यह सोचने के लिये विवश हो जाता है कि कवियत्री की यह बेचना मौकिक है या धर्मौकिक। इनकी कविताओं को पढ़कर ऐसा भ्रम होता है कि इनके जीवन में किसी न किसी प्रकार का दुःख या अभाव रहा है। किन्तु महादेवी वर्मा स्वयं और उनका जीवन इतिहास हम बात को सिद्ध करने में सहायक नहीं होते। इनके परिवार में कोई कष्ट नहीं था। बड़ी पूजा पाठ और माय्यताओं के बाद बरदान स्वल्प दान का जन्म हुआ। अतः सम्पूर्ण परिवार का धर्मिण दुलार इन्हें प्राप्त हुआ। इनके पिता श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा पूरा साधन सम्पन्न नामी बर्मीन थे। पुत्री को सुख सुविधा का उन्होंने पूरा ध्यान रखा। शिक्षा के साथ इन्हें चित्रकला और संगीत शिक्षा दिसाने का भी अवसर मिला। अतः महादेवी वर्मा को काव्यक्षेत्र में किसी प्रकार का अभाव

रहा हो यह अक्षयमीय है । १ वर्ष की उम्र में इनका विवाह सा० स्वर्ण नारायण से हुआ । उस समय छोटी अवस्था के कारण विवाह क्या होता है इसकी इन्हें चेतना भी न थी । समुदाय वालों ने ५, ६ वर्ष के मिये इन्हें माता-पिता के ही घर छोड़ दिया । जब बीच में अध्ययन करती रहीं । बी ए में इन्होंने वर्धनशास्त्र का अध्ययन किया । उसमें महारमा बुद्ध के जीवन और निष्ठाओं से ये इतनी प्रभावित हुई कि इन्होंने मिथुली बनवाने का निश्चय कर लिया और समुदाय जाने से मना कर दिया । परिवार वालों ने इन्हें मिथुली तो नहीं बनने दिया किन्तु इनका समुदाय न जाना स्वीकार कर लिया । तब से महादेवी बर्मा साहित्य क्लब में मिथुली न हाते हुए भी लगातार मिथुली का सा जीवन व्यतीत कर रही हैं । घरेलू पर स्वेत सादी की साड़ी उनकी चेतनुया है । घर में एक थोर सबे महारमा बुद्ध ईसा पांथी और रवीन्द्र के चित्र तथा दूसरी थोर सरस्वती और श्रीकृष्ण की मूर्तियाँ एक आभ्रम की सी मलक प्रस्तुत करती हैं ।

तब कविता में व्यक्त इनकी पीड़ा और बेचना का रहस्य क्या है ? मेरे विचार में जैसे बुद्ध आर्याण स्वभावतः सांसारिकता से विरक्ति का भाव लेकर जन्म लेती हैं, उसार के अपार वैभव भी उन्हें आकर्षित नहीं कर पाते वे दूसरों की पीड़ा और बेचना से व्यथित रहती हैं । वैसी ही अनुभूति महादेवीजी के हृदय में विद्यमान है । उनका हृदय इतना कोमल और कल्याणप्रिय है कि बेचना उनका स्वभाव बन गई है । वे इसी में अपार आनन्द का अनुभव करती हुई कहती हैं —

घपने इस मुने पन की मैं हूँ रानी मतवासी
 बाणो का दीप जलाकर करती रहती बीबासी ।
 मेरी घण्टें खोती हैं इन घोठों की घोटाँ में
 मेरा सर्वस्व क्षिप्ता है इन बीबानी जोटाँ में ।

मुवावस्था में जब जगत् और प्रकृति के विषय में इन्हें कुछ चेतना हुई तब हृदय में जो पाव उठते थे उनका वर्णन करते हुए इन्होंने लिखा है —

किस भाँति कहूँ कैसे थे, वे जग से परिचय के दिन ?
मिथी सा धुन जाता था मन झूठे ही भाँसूकन ।
अपनेपन की छाया तब देखी न मुकुर मानस ने
उसमें प्रतिबिम्बित सबके सुख दुःख लगते थे अपने ।

प्रारम्भ से ही जपत् की पीड़ा ने महादेवीजी के हृदय में असीम
पीड़ा को जन्म दे दिया था । उस समय कवयित्री के मन में धामू और
हेरी एक विचित्र कीड़ा सी करते रहते थे । मन विस्मय विमुग्ध था
और संसार पीड़ा मोय रहा था ऐसी पीड़ा जो कुत्सित जापियों को
मले लगा सके । कवयित्री के अनुसार वे संसार के दो परस्पर विपरीत
छोर थे —

यह दोनों दो छोरों की संस्कृति सी चिपपटी की ।
उस दिन मेरा बुझ सूना, मुझ दिन वह सुपमा फोकी ।
कितने अन्धकारे आकर, वह लिया कुरा भीलापन ?
उस विस्मृत के अपने थे चौकाया धुकर जीवन ।

महादेवी बर्मा की कविता में जितनी बेइया और कफ़सा है जीवन
में वे जतनी ही हेरी से भरपूर हैं । इसका कारण उन्होंने स्वयं
लिखा है —

सिमत बन कर नाच रहा है, अपना सपु सुन घबराँ पर ।
अनिमय करता बसकों में लबका बुझ धामू बनकर ।

उनकी हँसी उनके सुनी जीवन की साथ है और धामू संसार के
दुनी जीवन के प्रतीक है । पूरे में तड़पती जितनी को पीड़ा ने कितने
मन अविष्ट हुए हैं ? बाहरों की धाया में जातक को रोने रखकर
जितनी धारों में धामू बहे हैं ? पर कवयित्री इन्हें बेगन अथु विगमित
हो पड़ती थी —

नव बेघी की रोता था अब जातक का बागक मन,
इन धारों में कफ़सा के पिर पिर आते न भावन ।

फिरछों को वेस चुराते बिबिध पंचों की माया ।

पलकें धाकुस होती बीं तितसी पर करने छाया ।

इस भाँति मनुष्य से लेकर समस्त बड़ बतन प्रकृति कर्मिणी की प्रवाह कल्या के पात्र हैं । इस कठोर निर्मल जगत् के अनुग्रह अपने आपको न पाकर वे अनुभव करती हैं -

अधुमल कोमल कहाँ तू भागई परदेसिनी री ।

ऐसा करुणामय कोमल हृदय पाकर महादेवीजी के लिये यह असंभव था कि वे सत्कार के बिन्ही सीमित संबंधों में अपने आपको बद्ध कर पाती । उनकी करुणा और पीड़ा ने उनका सबब उस चिरन्तन ब्रह्म से जोड़ दिया जिसे पाकर वे 'प्रिय चिरन्तन है सति हास्य हास्य नबीन मुग्धागिनी मैं' का पौरव प्राप्त कर सकी हैं । इस एक संबंध से संसार के सारे संबंध उनके लिये मधुर हो गये हैं । उन्होंने लिखा है -

'मधुर मुग्धों हो सके सब मधुर प्रिय की भावना ने ।

किन्तु ऐसा प्रियतम पाकर क्या उनकी बेचना समाप्त हो गई ? नहीं-बहु तो बिरस्वायी है क्योंकि उसी ने तो प्रियतम की अनुभूति कराई है इसीलिये वे कहती हैं -

पर शेष नहीं होनी यह मेरे प्राणों की पीड़ा

तुम को पीड़ा ने दूरा तुम में दूईनी पीड़ा ।

दुःख में भगवान् को डूँढ़ना या उसका धामास्य या सेवा कितना स्वाभाविक है । जो दुःख इतनी प्रमुख्य वस्तु प्रदान करे उस छोटा भी कैसे काम ? ईश्वर से मिलन की धाकेंका उन्हें रहती है जो इस बिस्व के दुःखों से छूटकर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं । किन्तु महादेवी का जीवन तिहास इसके विपरीत है । वह चाहती है -

मिलन का मत माय के सति मैं बिरह में फिर रहूँ ।

ईश्वर से निम्न का हाथपै है धमरभोक की प्राप्ति जिसमे असम धामन्य है । किन्तु बेचना और धनसाद रहित धामन्य भी कोई धामन्य है ? इसीसे कवयित्री उसे प्रस्वीकार करती हुई कहती हैं -

ऐसा तेरा भोक बेचना नहीं नहीं जिसमें धनसाद ।
 जमना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद ।
 क्या धमरों का नाक मिलेगा तेरी कन्ध्या का उपहार ।
 रहने दो हे देव । धरे वह मेरा मिटने का अधिकार ।

किन्ती की प्रतीक्षा में दिन बिताना जिसका मधुर है उतना उसकी प्राप्ति का मुक्त मधुर नहीं होता है । दूसरों के लिए जलते रहना जीवन का लक्षण है । महादेवी अपने जीवन को जीपक की भांति जलते रहने के लिये प्रेरित करती हैं -

मधुर मधुर मेरे जीपक जल ।
 बुध बुध प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल ।
 प्रियतम का पत्र प्राप्नोक्ति कर
 सीरस फैला विपुल धूप बस
 मृदुल मोम का पुल रे मृदु तन
 है प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
 तेरे जीवन का भलू पल पल ।

इस प्रकार महादेवीजी की रहस्य भावना परंपरपथ रहस्य भावना से भिन्न उनकी निजी अनुभूति पर प्रबलभित है । यद्यपि ग्रन्थ रहस्य भावियों की भांति प्रकृति के लीनत्व में उन्हें भी प्रियतम के दमन होने है उसने भी संकेत दिखाई देते हैं यथा -

कुमुद उस से बेचना के बाग को
 पौलनी बर भागुमों से रश्मियाँ
 भीक उठती धनित के निदधान धू
 तारिचार्य जित सी धनवान भी

तब बुला जाता मुझे उस पार जो
 दूर के संघर्ष का वह कौन है ?

कभी पीतल मय पवन उन्हें छूकर किसी मधुमय जीवन का स्मरण करा देती है जिससे प्रिय के मिलन के भिये उतावली होकर सोमह गू वार सजाती है । किन्तु इस रहस्य में जो माधुर्य है और बदना पीड़ा की जो निपछल अभिव्यक्ति हुई है वह प्रत्यक्ष नहीं मिलती । महादेवीजी के पीछे अपने माधुर्य और सहज अभिव्यक्ति के कारण हिन्दी साहित्य में अपना विशेष योग्य रखते हैं । भावों की सहजता और भाषा की बटि सठा के कारण महादेवीजी की रचनायें जनसामान्य की पहुँच से दूर हैं किन्तु जो उनके मर्म को समझते हैं वे अमुक्त कठ से इनके गीतों की प्रशंसा करते हैं । इन्होंने साहित्य को ऐसी वस्तु प्रदान की है जो सुगम तक प्रसर रहेगी ।

इस समय आप ३५ वर्ष की हैं । हिन्दी वयस् ने अपनी इस काम्य को कला के प्रति आदर और आस्था के समन 'महादेवी अभिनन्दन ग्रंथ' के रूप में अर्पित किये हैं ।

‘चित्रलेखा’ की मर्म कथा

मैं चित्रलेखा हूँ—‘चित्रलेखा’ उपन्यास की नायिका। मेरे नाम पर इस उपन्यास का नामकरण हुआ है। यह मेरे सिये गीरण की बात होनी चाहिये थी किन्तु इसमें सबसे अधिक ठस मेरे हृदय को लगी है। मैं सत्य कहती हूँ कि मैं इस उपन्यास की सबसे अधिक दुर्बल वास्तविकता की मई हुई। दुर्बल जो अपने जीवन में कभी किसी एक सिद्धांत पर स्थिर नहीं रह सकी है।

लेखक ने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया? बात यह है कि वह अपने कुछ विभिन्न जीवन सिद्धांतों की पुष्टि के लिये किसी के जीवन को अपने साधन बनाना चाहता था। उसे बताना था कि ‘संसार में पाप कुछ भी नहीं है वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की भ्रमिता का दूसरा नाम है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है। वह परतंत्र है और परिस्थितियों का दास है। क्या कोई भी व्यक्ति बता सकता है कि वह क्या करने चाहा है? क्या करना चाहता है? और क्या करेगा? नहीं। यही तो सत्य नहीं। एक अज्ञात शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को जमाती है। मनुष्य की इच्छा का कोई मूल्य नहीं। वह कर्ता नहीं है। साधन मात्र है। कि पाप और पुण्य क्या?

उपर्युक्त मत की पुष्टि के लिये उपन्यास में मेरा जीवन साधन रूप में प्रयुक्त हुआ है। लेखक ने मुझे अपनी कल्पना का ऐसा गिलासा बनाया है जिसे जब समय चाहा मन्दिर की मूर्ति बनाकर पूजा और जब चाहा निमग्नता से उठाकर फेंक दिया है। यदि पाप पुण्य की उसकी स्वयं निर्धारित समीचीन उपन्यास के समी पात्रों पर समान रूप से सामू की गई होती तो मुझे कम से कम इसमा सम्मोष रहना कि वह मेरे जीवन में ही नहीं गया अपितु सबको जगने समय तक का गैर गिनाया है।

किन्तु आश्चर्य यह है कि धर्म पाप परिस्थितियों के जल में फँसकर भग्न बुरा करने पर भी किसी न किसी प्रकार पाठकों की महानुभूति पाने या स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने में समर्थ हुए हैं। एक में ही ऐसी सहाय छोड़ दी गई है। जिसके पास अपने कुर्यों का कोई प्रति कार नहीं। प्रत्येक व्यक्ति मुझे ही बोधी बठाकर मुझे भिन्नकारण हुआ दिखाया गया है। शेषक ने मुझे बीमब-विश्वास की मदिरा में निमग्न वासना की ऐसी पुतली बनाया है जिसके जीवन का मूलमंत्र अधिकतम काम पिपासा है जो कभी शान्त नहीं होती और जो अपने रूप सौन्दर्य से दोनों का योग भ्रष्ट करने में समर्थ है। नारी का यह विद्वत् रूप चित्रित करते करते पुण्य हृदय धभी तक बका नहीं है। कौन ऐसी स्वाभिमानिनी नारी होगी जिसे अपना यह रूप प्रिय हो अबबा जो किसी को अपने जीवन से छिन्ननाश करने के लिये इस प्रकार स्वतन्त्र छोड़ दे ? मुझे पुरुष है कि सामान्य बीजगुण की प्रिय नर्तकी होने के नाते ही जीवन का सारा वस्तु मुझ पर बोधकर सपत्न्यास में झूठे सच्चे और निरपचार सिद्धांतों की पुष्टि का प्रयत्न किया गया है।

बात इतनी भी कि महाप्रभु रामानुज के दो शिष्य श्वेताक और विशासदेव जानना चाहते थे कि पाप क्या है ? मुन्नेष स्वयं इस कठिन प्रश्न का समाधान नहीं कर पाये थे अतः उन्होंने पाप का पता लगाने के लिये दोनों शिष्यों को सत्तार के विशास क्षेत्र में छोड़ दिया। अभ्यसित स यह विषय जानना कठिन था इसके लिये अनुभव की आवश्यकता थी। श्वेताक को उन्होंने बीजगुण का शिष्य बनाया क्योंकि बीजगुण का जीवन भावमय था उसके जीवन का सारा कुछ रत्न-वटित मदिरा के पार्श्वों में था और उसका हृदय संसार की समस्त वासनाओं का निवास-स्थान था। यहाँ रहकर पाप का अनुभव करना सरल था। विशासदेव को आचार्य ने कुमारगिरि का शिष्य बनाया क्योंकि कुमारगिरि ने समस्त वासनाओं पर विजय प्राप्त करली थी। वासनाओं के कारण ही मनुष्य पाप करता है। कुमारगिरि पापों से बहुत दूर तप और संयम का जीवन

ज्योतीश करते थे। कुमारगिरि के पास रहकर पाप की नहीं पुण्य की जानकारी प्राप्त हो सकती थी। जो पुण्य नहीं वह पाप है। तब इसकी जानकारी क्या कठिन थी ?

जिस समय स्वैतांक बीजगुप्त के मवन में धाया, बीजगुप्त ने उसे स्पष्ट रूप से बताया कि चित्रसेखा मेरी पत्नी के बराबर है यद्यपि वह तुम्हारी स्वामिनी है। मुझे उस बह्वचारी की स्वामिनी बनने में गौरव का अनुभव हुआ। मैं उस समय यह नहीं समझ पाई थी कि इसमें भी कुछ मेघ है। मुझे बाद में बात हुआ कि मैं स्वैतांक की स्वामिनी इसमिये बनाई गई हूँ कि मैं उसे पाप की जानकारी करा सकूँ उसे भविष्य पीना सिखा सकूँ और उसे अनुभव करा सकूँ कि नारी के सौन्दर्य और नारी के स्वर्ण में क्या मादकता है।

वह २५ वर्ष का युवा बह्वचारी मेरी चाकरी पर छोड़ा गया जिसमें वह मादकता, सम्पाद और वाचना का पाठ सीख सके। उसे मेरे हाथ से पढ़ित दिखाकर मुझे बीजगुप्त द्वारा इन सबों में बधाई दिखाई गई, "बह्वचारी आज तुम्हें नर्तकी से सीखा भी है इसके उपसमय में मैं चित्रसेखा को बधाई देता हूँ। बीजगुप्त की इस बधाई में कितना व्यर्थ निहित है क्या मैं नहीं समझती। स्वैतांक बीजगुप्त के इन सबों पर चौंक उठता है उसकी मोह निद्रा एकधम जग होती है और उसके हृदय में इतनी प्रतिक्रिया होती है कि धावेन मैं वह मेघ हाथ पकड़कर मुझसे पूछता है देवि ! आज तुमने मेरी वाचना शुरू कर दी। तुमने यह क्यों किया ? तुमने मेरे हृदय में उदात्त प्रवृत्ति कर दी है। किसे मिले ? मेरे जीवन में तुम बरकत बनकर आवाएँ क्यों आ पड़ी ?" स्वैतांक के प्रश्न पर मेरा भी चाहता है कि स्वैतांक की गिरा पड़कर प्रष्ट कि उठत मुक्त ! वह तुम्हें पीने नाम को हो होन नहीं तो पिनामे नामे का क्या बात ? पर धारण्य ! मेनक मैं इसके विपरीत मुझे स्वैतांक के सामने धरती भी टहनकर लमा मानने के नियम बाध्य किया है। एक अनजान प्रसीध नामक का पीन की

मादकता का शिकार बनाने के लिये मुझे स्वयं व्यभिचर होते दिखाया गया है ।

स्वेटांक का मजिदा पीना पर-स्त्री का स्पर्श करना और उससे प्रेम करना अनुचित नहीं बताया गया क्योंकि उसमें स्वेटांक का दोष नहीं परिस्मृतियों का दोष है । उसे बीजगुप्त ने सात्वना दी कि तुमने कोई अपराध नहीं किया । अपराध कर्म में होता है विचार में नहीं । जरा इस तर्क को मुझ पर बना कर देखिये । मुझसे कर्म कराया गया है विचार नहीं तब क्या इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि अपराधी मैं हूँ ।

एक के बाद एक अपराध मुझसे कराया गया है और सर्वत्र मुझे उसके लिये सम्मिलित किया गया है । मेरे हृदय में कभी इतना रोष उत्पन्न नहीं किया गया है कि मैं इसका प्रतिकार कर सकूँ और अपने अपराधी को मुहताज बनाव दे सकूँ । मानो मेरा हृदय रक्त-मांस का बना हृदय नहीं काष्ठ का ऐसा टुकड़ा है जिसे काट-पीट कर कहीं भी किसी प्रकार भी प्रयुक्त किया जा सकता है । जीवन के प्रारम्भ से मैंने अपने साथ सेलक का यही व्यवहार पाया है । मैं नर्तकी क्यों बनी ? इसका रहस्य केवल यह था कि मेरे पास जीविका के साधन नहीं थे । १२ वर्ष की बचपन स्त्री को संसार में फुसलाने-बहलाने नामे बहुत होते हैं किन्तु उसके पालन-पोषण की जिम्मा किसी को नहीं होती । बिनसता मैं मुझे नर्तकी बनना पड़ा । पर सेलक को क्या पड़ी जो सत्य कहे । उसे तो अपने मत की पुष्टि करनी है । इसीलिये उसने मेरे बारे में बताया कि जीवन के उभार से मेरा संयम टूट गया । मैंने कृष्णादित्य नाम के युवक से प्यार किया गर्भवती होने के कारण घर से निकाल दी गई और तब एक नर्तकी ने मुझे आश्रय दिया । फिर मैंने बीजगुप्त से प्रेम किया और उसकी पत्नी के समान बनकर रही । क्या नर्तकी होने का तात्पर्य केवल यह है कि वह पुरुषों के जीवन से छिसे और उन्हें अपने अपमान में फँसाकर बोझा दे ? उपन्यास में मुझे कितने पुरुषों के जीवन का अमि श्राप बनाकर दिखाया गया है । बीजगुप्त के बाद स्वेटांक स्वेटांक के

बाद कुमारगिरि और कुमारगिरि के बाद पुन बीजगुप्त के साथ मेरे वास्तविक संबंध विचारकर मुझे अनन्त वास्तविकता की चिन्ता करने के प्रतिष्ठित सम्पूर्ण उपग्रह में और किया ही क्या गया है ?

योमी कुमारगिरि, जिनके आश्रम में विद्यालोक पाप की शोच न बसा था बहुत संयमी विद्यावेत्ता थे । वे संसार से बहुत ऊँचे उठ चुके हैं । उन्होंने विद्यालोक से कहा है कि 'अपम और नियम से पाप दूर रहता है । मेरी कुटिया में तुम्हें संयम से रहना होगा । यहाँ भी मेरा नै बीजगुप्त के साथ मेरा वास्तविक प्रवेश कर के मुझे कुमारगिरि के पतन का कारण बनाया है । कुमारगिरि भूकं देखकर आरम्भ में ऐसे चौकटे हैं जैसे उन्हें विष्णु ने डंक मार दिया था । वे मेरा अपमान करते हुये बीजगुप्त से कहते हैं—'अतिथि । मैंने इस कुटी में स्त्री को आश्रम देने में सफल किया था । वह इसलिये कि स्त्री धर्मकार है । मोह है, माया है, वासना है । ज्ञान के आश्रमिक संसार में स्त्री का कोई स्थान नहीं । कुमारगिरि के इस कथन पर एक साधारण स्त्री को भी रोष आता स्वाभाविक है किन्तु इतनी अपमानित होकर भी वो स्त्री उसी पुण्य से प्रेम करने के लिये आसामित हो उसके जीवन को बिकार है । मेरे और कुमारगिरि के बीच इतने गहरे और वास्तविक प्रेम का प्रदर्शन करके मेरा ने अपनी बहुत बड़ी परिचय दिया है । सम्राट् चन्द्रगुप्त के दरबार में कुमारगिरि को मेरे ज्ञान और तर्क में प्रभावित दिखाना तो एक बहाना है । उसकी छाड़ मे जो बात वह दिखाना चाहता है वह यह है कि मैं पुन कुमारगिरि के सौम्य से आकर्षित ॥ और बीजा मने के बहाने उसके आश्रम निकट आना चाहती ॥ । बीजगुप्त के हृदय में मेरी छोरे मे जका उठाना और स्वेतांक के सामने मेरे मुख से ही कुमारगिरि के प्रति मेरे प्रेम की स्वीकृति कराना ये दोनों तथ्य इस बात के साक्षी हैं कि मेरी वासना कुमारगिरि को पचभट्ट करने के लिये आनुर है । इसमें संदेह नहीं कि मेरे साथ कुमारगिरि की मामला को भी दूर दूर होने लगाया गया है किन्तु उनके लिये मेरा ने ऐसा

बातावरण तयार किया है कि जिसमें पाठक कुमारगिरि को बोधी न मानकर मुझे ही उसके पतन का मूलकारण मानते हैं। स्त्री का सम्पर्क कैसे नहीं पराजित कर देता ? पाठकों की दृष्टि में कुमारगिरि के पतन की परिस्थितियों का बोध बताने में लेखक ने कुछ उठा नहीं रखा। उसे ऊँचा उठाने के लिये वहम ही लेखक ने उसके मुख से कहसा दिया है 'नर्तकी तुम्हें बीसा देने के बर्ब होते हैं फिरना नीचे गिरना। कहीं' नीचे ही नीचे जहाँ अन्त हो नहीं है। मैं तुम्हें जानता हूँ और मैं अपने को भी जानता हूँ। तुम्हें उपर छठाना कठिन है, स्वयं नीचे गिरना सरल है। यदि मेरे चरित्र की रक्षा के लिये लेखक मुझसे भी कहीं इस प्रकार कहसा देता तो शायद उसकी भावनाओं पर ठेस लगती। मुझे तो उसने कुमारगिरि के स्वयं से आनन्द का अनुभव करते दिखाया है। जो कोई इसमें बाधा डालता है उस पर मुझे सपिणी की भाँति फुफ्फुलाते हुए चिन्तित किया है। मेरे जीवन को इस प्रकार मनमाने ढंग से बदनाम करने की लेखक ने अनधिकार पैदा की है। निश्चय ही यह मेरे साथ असम्भव है। मैं मानती हूँ कि एक या दो स्वान पर मुझे कुमारगिरि के प्रभाव से तब और सावना की ओर आकर्षित होते दिखाया है किन्तु सब जानते हैं कि यह आकर्षण कितना अस्थायी है। कुमारगिरि के निश्चय ने सामने वह धोस की बूब की भाँति कुलक जाता है। जिस समय कुमारगिरि पर मेरा रोष प्रकट करते हुए मेरे मुख से उसे सावना के कीड़े ! नीचे ! झूठे पशु ! आदि भद्दे नामों से संबोधित कराया गया तब यह समझना कि लेखक ने मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट की है नितांत भ्रम है। वह सब ढोंग इसलिये रचा गया है कि मेरे पतन की सभी एक घोर सीढ़ी दिखाना वाली है। कुमारगिरि को अपना अपमान असह्य हुआ घत वह लड़ा होकर नीचने लगा बाधों नर्तकी ! मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं तुमने मुझे बिराया और तुम मुझे उठा भी रही हो। तुमने सिर्फ मुझे पराजित किया—मैंने भी तुम्हें पराजित किया। तुम मुझसे क्या कहती हो ? वहम अपने को देता

अपन मुख पर पाशविकता की छाया को देखने में तुम समथ नहीं हो सकती—इतना मैं जानता हूँ । बाधो अपने साथ अपना अभिजाप लेती जाओ । कुमारगिरि द्वारा ही नहीं उसके सिष्य विश्वामदेव से भी मुझे प्रताड़ित करवाया गया है । विश्वामदेव की क्या हस्ती है वो वह मुझे कहे 'देवि बिभ्रमेक्षा । तुम्हारी उपस्थिति इस कुनी की सयमपूर्व शांति को नष्ट कर रही है मैं प्रार्थना करता हूँ तुम हम लोगों पर दया करो ।' पर सेलक ने तो पाशों का मुझे प्रताड़ित करने के लिये ही गड़ा है । फिर वह ऐसा क्या न कहे ? विशालदेव की बात के उत्तर में जो छन्द मेरे मुँह से कहलाये पड़े हैं वह सारे उपन्यास में विनित मेरे चरित्र को स्पष्ट करने में सबसे अधिक उपयुक्त कहे जा सकते हैं । उसने मुझ से कहलाया है 'वमा ? किछ पर दया करने को कह रहे हो और किससे दया करने को कह रहे हो ? तुम अधिक से दया की धाया करते हो तुम संहारकर्त्ता से निर्माण कराना चाहते हो । जूमते हो । जूमते हो । अब तो पाठक समझ सकेंगे कि इस उपन्यास पर मैं गौरव अनुभव कर' कि हुरम में स्वाप्त बेचना और धाकोल के भार से अपना वसा घोट नू ।

एक और बात कप है जिसे कहे बिना कथा पूरी नहीं होती । वह है उपन्यास में मेरे और बीजगुप्त के चरित्र का तुमनात्मक परिचय । बीजगुप्त मोदी है उनके हृदय में नमस्त बाधनामों का निवास बसाया गया है । वह नास्तिक भी है । मदिरा का अलस्य पुजारी है । इन सब कमजोरियों के होने हुए भी वह अपने प्रेम में एकनिष्ठ दिलाया गया है । मृत्युञ्जय भगसक प्रयत्न करते हैं कि अपनी नव्या यशोवरा का विवाह बीजगुप्त से करवें । किन्तु बीजगुप्त उनसे स्पष्ट कहता है—'मार की दृष्टि से मैं अविवाहित हूँ पर वास्तव में मैं विवाहित हूँ । मेरा और चित्रमेगा का संबंध पति-पत्नी का था है । मैं प्रेम में बिदवान करता हूँ । चित्रमेगा के रहने मेरे प्रेम की अधिकारिणी दूसरी स्त्री नहीं हो सकती । वितमा मुग्ध धात है । यद्यपि यशोवरा और मेरे कप और कुल की तुमना करने में बीजगुप्त का धाकास पाताल पर अन्तर बिगार देता

है वह यशोवरा के मोनेपन धीरे बेबी स्वरूप पर मन ही मन मुग्ध भी है, किन्तु फिर भी उसका हृदय गवाही नहीं देता कि वह मुझे छोड़कर यशोवरा से विवाह करे। मेरे भाव समझाने पर भी वह यही उत्तर देता है 'मैंने अपने जीवन में केवल तुमसे प्रेम किया है और साथ ही तुम्हारे सिवा किसी से प्रेम नहीं कर सकता। मेरा विवाह असम्भव है। प्रेम की इस एकनिष्ठता में मेरे प्रेम का रूप देखिये ओ बीजगुप्त और कुमार गिरि दोनों को एक साथ बोला दे रहा है। कुमारगिरि से अपना प्रेम छिपाती हुई मैं बीजगुप्त से कहती हूँ प्रियतम। कुमारगिरि बोधी है और मूर्ख है। उसकी आत्मा मर चुकी है। प्रियतम। ससार में कोई भी व्यक्ति हम दोनों के बीच नहीं आ सकता। बूझरी और कुमारगिरि से कहती हूँ—'मैं आपको बोला नहीं दे सकती। बहुत सम्भव है मैं बीजगुप्त को बोला दे रही हूँ। मेरे इस छलनामय प्रेम का कोई अन्त है। सूर्योदय की भाँति एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद पहले को अपना प्यार अर्पित करते दिखाकर भलाक ने मुझे राससी रूप प्रदान किया है। जीवन की यह विडम्बना किसे सह्य होगी ! बीजगुप्त को पाठकों के हृदय में कितना ऊँचा स्थान बिनाया गया है। किसके मूल्य पर, मेरे ही न ? मेरी समस्त मानवीयता मेरी मानमा मेरा मारीत्व और सबसे ऊपर मेरा चरित्र मट्ट करके लेकाक मले ही किसी नये आदर्श की स्थापना में फूला न समाया हो किन्तु मेरी मम व्यथा—एक नारी की मम व्यथा—उसे कभी क्षमा नहीं करेगी !

सहानुभूति की पात्र - माँडवी

रामायण के सभी नायक पात्र सहानुभूति और संवेदना के पात्र हैं क्योंकि समा का जीवन दुःख और वेदना की मम्बी कहानी है। माता कौसल्या के हृदय से धूमिले जिसका एकमात्र पुत्र उनकी बड़ा बच्चा में १४ वर्ष की मम्बी शबदि के लिये बन चला गया वह भी किसी अपराध के कारण नहीं केवल सपत्नी की ईर्ष्या से। १४ वर्ष बाद राम के लौटने पर कौसल्या उनका मुल देख सकेंगी या नहीं केवल विधाता जानता था। इसी प्रकार सुमित्रा और कैंकेयी १४ वर्ष के लिये अपने पुत्रों से विमुक्त हो गई। भरत भले ही शबोष्मा से कुछ दूर नालिग्राम में रहते थे किन्तु कैंकेयी से उनका नाता टूट सा चुका था। इसके प्रतिरिक्त यदि दशरथ कुल की पुत्रबधुओं पर दृष्टिपात करें तो हृदय को सारी सहानुभूति और वेदना उनके दुःख में सुख्य दिलाई देगी। हमें ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलेंगे जिनमें किसी को राजकुल में पत्नी और राजकुल में ब्याही हुई राजा जनक की कुमम सी कोमल राज कुमारियों के समान जन्म भर बेचना में लक्ष्मण पड़ा हो। सीता के ग्राम्य में मालो मुल बहा ही न था। जो राजदरारी होने जा रही थी उसे बाँटों में चलना पड़ा पत्थर पर सोना पड़ा। जिनसा ने पति की प्रतीक्षा में १४ वष तक रो-रोकर अपने जीवन का मुनहरा समय लो दिया। उसके जीवन का धारक्यण ही समाप्त हो गया। तीसरी बहुत भरत की पत्नी माँडवी है। इसका जीवन अपना इन दो बहनों में भी प्यारा बटकर है। किन्तु कवियों की महिमा बेतिये कि इस बेचारी के लिये उन्होंने सहानुभूति के दो शब्द नहीं नहीं लिखे। सुमती और बाल्मीकि ने तो उर्मिमा को भी उपेक्षित कर दिया था किन्तु मैत्रिणीकरण पुनः मैत्रिणी उर्मिमा के दुःख में सहानुभूति अनुभव कर उसी वेदना

को बाएही प्रदान की है। बैचारी मांडवी को व्यापार अभी तक मूक है वह दशरथ कुम की सबसे उपेक्षित पुत्रवधू है। मांडवी का त्याग सीता और उर्मिला से किसी प्रकार कम नहीं है और मेरे विचार में तो उन दोनों से अधिक है क्योंकि सीता राम के साथ भी उन्होंने केवल पति का नाता ठीक मानकर अन्य सब गले तोड़ दिए थे। सीता को पति के साथ कूटिया में राजभवन का सा आनन्द प्राप्त था। उर्मिला को एक सहारा था कि उसके पति बहुत दूर राम की सेवा में पुष्पार्जन कर रहे हैं। लक्ष्मण राम की सेवा के लिये सबका आतुर्य के कारण बन पड़े थे इसलिये उनका महत्व सबकी आँखों में बढ़ गया था। कौसल्या और सुमित्रा दोनों ही उर्मिला को सहानुभूति की दृष्टि से देखती थी किन्तु मांडवी की दशा इन सबसे विपरीत है। उसके पति के सिर पर कनक है पर आत्मत्यागि संकेत दिन रात लपेटे रहते हैं। मरत के कारण राजकुल में जो ख्यात हुआ उसकी श्लाघा से मरत का जीवन शून्य हो गया था। वे कर्तव्यवत् शरीर से वीरित सबस्य थे किन्तु उनका हृदय टूट चुका था। उन्हें माता पत्नी भाई परिवार किसी की मुच न थी। उन्हें चिन्ता थी तो यहाँ कि उनके ऊपर जो बाँधन है यदि सी बन्ध लेकर भी उसका प्रायश्चित्त करना पड़े तो कम है। वे नमिद्वाम में राम लक्ष्मण सभी अधिक कठोर श्रम कर रहे रहे थे। ऐसी स्थिति में मांडवी की दशा की कल्पना कीजिये। उसकी दशा उस व्यक्ति के समान है जिसे मार जाय और रोने न दिया जाय। पति की भाँति उसने सब मुँहों को तिलागति दे दी। हाथों में चार चुड़ी और माथे पर सिन्दूर की रेखा लगाकर वह मन ही मन अपने सुहाय की कामना करती है। उसे कहीं से सहानुभूति प्राप्त नहीं। महलमें रहती हुई भी वह बनधामिनी है। कौसल्या सुमित्रा और उर्मिला की दृष्टि जब मांडवी पर पड़ती होती तो वह निश्चय ही उनकी आँखों से झँकती उपेक्षा से तिजमिला उठती होगी। पुत्र जब साथ नहीं देता तो माता के लिये पुत्रवधू भी विपरीत ही बन जाती है। मांडवी के लिये कठेयों के हृदय में

कोई सहानुभूति होगी ऐसी भाषा नहीं होती। मरत उससे कुछ ही दूर नन्दिग्राम में रह रहे हैं किन्तु मांडवी से वे इतनी ही दूर थे जितन मदमण उमिता से। प्रिय के घाल से घोरम हो जाने पर वियोग की पीड़ा किसी न किसी प्रकार सहन हो जाती है किन्तु घाल के सामने खूबे मन को समझाना बड़ा कठिन होता है। मांडवी ने १४ वर्ष तक इस कठिन स्थिति का सामना किया। वह नित्यप्रति भोजन लेकर नन्दिग्राम जाती है किन्तु दो बड़ी बैठकर पति का बात नहीं कर पाती। एक परिवारिका के समान जाती घोर लौट जाती है। भोजन का बात रखकर लौटते समय मांडवी की घालों से साबन माचों की सी झड़ी लग जाती होगी। विधाता ने उसे भी क्या भाग्य दिया है। सब की सेवा में रत रहना और भ्रमर ही भ्रमर घाँसू पीना उसके भाग्य में लिखा है। घर में सास और बहन की सेवा का भार उसी पर है। वह बड़ी कठिनाई से अनुनय-विनय करके सबको भोजन खिलाती है। यदि किसी दिन उमिता पति-वियोग में व्यादा दुःखी होकर बाना धोड़ बेती है तो मांडवी को भी उसके साथ भूसा रहना पड़ता है। उमिता के घाँसू देखकर मांडवी का मन होता है कि पृथ्वी कट जाय और वह जगमें समा जाय। उसे ऐसा प्रतीत होता है माना कि सबको दुःख का कारण बही है। अतः उसे एक बड़ी एक पल चैन नहीं मिलता। सबको प्रसन्न करने की चेष्टा में उसकी निजी लुगी समाप्त होगई। ऐसी साध्वी बन् के विषय में साहित्यकारों का मौन बड़ा आश्चर्यजनक है। कवि का हृदय तो बहुत संवेदनात्मक होता है पर मांडवी के विषय में बास्वीकि और तुलसी की संवेदना क्यों आप्त नहीं हुई आश्चर्य है। व्यादा का भार धारा हो जाता है यदि सहानुभूति में कोई दो शब्द कह देता है किन्तु यदि कोई पूछने वाला न हो तो व्यादा का भार अनुपम दो पीछ डालता है। मांडवी सहानुभूति के अभाव में फिर लज्जता गिराई देती है।

पति पुन के समाधा बाता-पिता की धोर में भी मांडवी की सहानुभूति नहीं मिली। लौटा और उमिता की व्यादा जनक और जयनी की व्यादा

व्यभिच करती है क्योंकि उन दोनों के प्रति वनवासी हैं। सीता राम के साथ
 व्यवस्थ है किन्तु उसके करीर पर वस्त्रत डेलकर और जंगम-जंगम मटभर
 देखकर माता की आँखें करुणा से भर आईं। जिस सीता ने बीपक क
 बाती भी कभी ऊँची न की हो वह जंगम के कष्ट सहन करती है—या
 देखकर कौन सहस्र है जो रो न पड़या ? प्रति विमोह में नित्यप्रति सुवर्त
 हुई उमिमा की पीड़ा से बनक-जमयी निश्चय ही व्यभिच से। किन्
 माइवी के प्रति उनकी सहानुभूति कैसी हो ? उसके प्रति जो राज्य मिमा
 है वह राजराणी बनने का रही है उसके प्रति सहानुभूति कैसी ? मुझ में
 सहानुभूति किसे मिलती है ? पर माइवी को बीसा मुझ मिमा उसे
 कौन नहीं कामता ? उसके हृदय में मचते हुए हाहाकार को सुनने और
 देखने का अवकाश किसे को बा ? वह प्रति कुम और पिता कुम दोनों
 और से उपेक्षित रही। बहनों ने भी सहानुभूति के दो वस्त्र उसके प्रति
 प्रकट नहीं किये। उमिमा के लिये सीता ने सहानुभूति से इतना तो
 कहा बा —

मात्र माय्य जो है मेरा वह भी हुआ न हा तेरा ।

राम ने —

नदमण तुम हो तपस्वुही मैं वन में भी रहा वृही ।

वनवासी है निर्मोही हुए वस्तुत तुम को ही ॥

मह कहकर उमिमा के त्याग की प्रशंसा की है। किन्तु माइवी
 की ओर किसी की दृष्टि नहीं गई। भरत की प्रशंसा में रामायण के
 पृष्ठ भरे हुए हैं पर उनकी वमपत्नी ने उनकी पत्नीर बत साबना में
 कितना मोय दिया इस किसी ने नहीं देखा। यदि कैंकेयी की तरह
 माइवी भी भरत से हठ करती कि 'मुझे राज्य करना ही पड़ेगा' पिता
 का वचन टालीये तो भरत मिसगा मेरा कहना नहीं मानोये तो मैं प्राण
 दे दूँगी' तब भरत क्या करते ? सारी तपस्या करी रहे जाती। गुप्तरी
 की रामायण का रूप कुछ और ही होता। सीता ने वन जाने का हठ
 किया तो राम को मानना ही पड़ा। यदि माइवी भी ऐसा ही हठ करती

तो शायद भरत को राग्य स्वीकार करना पड़ता और ऐसी स्थिति में पुरुषों के सब भावार्थ रक्षे रह जाते । पत्नियों के त्याग और तपस्या से पुरुषों में जुमाज में जो स्थान प्राप्त किया है यदि उसका मूल्यांकन किया जाय तो समस्त नारी वगैरह और सम्मान के सर्वोच्च प्राप्त पर प्राप्ति होने योग्य है ।

रामायण की कथा में सचमुच माँझी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है । राम के वनवास और बसरव की मृत्यु के बाद धर्मोपमा के राजकुस की व्यवस्था का साथ मार उसी ने संभाला है । सब ओर से उल्ला और मृणा सहन करके भी उसने सबको प्रसन्न रखने का भरपूर प्रयास किया । राजकुस की यह उपस्थिति बड़ी हम सब की सहानुभूति की पात्र है । कवियों की सहानुभूति प्राप्तकर जिस प्रकार कैकेयी उमिता यशोवरा विष्णुप्रिया धारि देवियों की व्यापक सबकी सहानुभूति का विषय बन गई है, उसी प्रकार माँझी की व्यापक भी किसी सहृदय नरि की बाणी द्वारा मुक्त होकर सहानुभूति प्राप्त करेगी ।

भारतेन्दु की 'जातीय संगीत' योजना

भारतेन्दु युग उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाओं के समारंभ में भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में गौरवपूर्ण पद पर आसीन है। इसका अर्थ कांच अथ सद्युगीन साहित्यकारों के उस दृष्टिकोण को है जिसके द्वारा वे साहित्य और समाज के परस्पर संबंध को अभिव्यक्त करना चाहते थे। भारतेन्दु युगीन काव्य ही सर्वप्रथम व्यक्ति और समाज की संकुचित परिधि से निकलकर जनता और समाज की विस्तृत भूमि में जनहितार्थ प्रयुक्त हुआ।

यद्यपि भारतेन्दु युग का अधिकांश काव्य (नाटकों को छोड़कर) पुरानी परिपाटी पर लिखित शृंगारिक है किन्तु वे रचनाएं, जिनमें कवियों ने तत्कालीन जीवन की विभिन्न समस्याओं का प्रयत्न किया है साहित्य के इतिहास के लिये मूल्यवान् है और देश तथा समाज के लिए अत्यन्त हितकर सिद्ध हुई है।

कविता तथा नाटकों द्वारा देश की तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक तथा आर्थिक दशा का निरूपण तथा अधिपत्य के लिये उत्पत्ति का मार्ग प्रदर्शन करके इस युग के कवियों ने देश की वर्तमान आवृत्ति और स्वतन्त्रता प्राप्ति में बड़ा महत्वपूर्ण योग्य प्रदान किया है।

देशहित के लिये रचित काव्य में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की 'जातीय संगीत' योजना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक उपबोधन में इस युग के नाटकों ने भी बड़ा कार्य नहीं किया जो साधारण बोधकाय की भाषा में लिखित मुखारखायी गीतों ने किया है।

भारतेन्दु के समय में सर्वसाधारण जनता में कजली दुमरी भास्वा लावनी आदि शृंगारिक अश्लील गीतों का इतना अधिक प्रचार कि उनके समक्ष न सत्काव्य को कोई गुणता था और न कोई सात्विक

उपदेश मायखों भावि की धोर ध्यान देता जा । तत्कालीन जनता की रूचि का कुछ अनुमान कवि 'उद्देश' के निम्न पद से दिया जा सकता है -

संक्षिप्त कवित्तन की बात है न कुरम की
कमक-कम्मानंत, फिन्त तान माने को ।
कहूँ 'उद्देश' भरें छहर कम्पूत सबै
तीसरे तेम-बाहिन को बना ना बचाने को ।
घाहर करत बाहियात के बर्कन को
तखि के पुरान बेर धरम के बाने को ।
जुरि के गंवार बैठ खीरुहे किन्तकि रैत
बास्त्रा के यर्बना को लीया रोख खाने को ।

स्वयं भारतेन्दु ने कन्नड़ी की तत्कालीन लोकप्रियता के विषय में लिखा है -

देखो भारत ऊपर कैंसी छाई कन्नड़ी
मिटि धुर में सपेरी सब धाई कन्नड़ी ।
दुख बेर की जूचन छोड़ माई कन्नड़ी
नृप-नन माय छाड़ माई कन्नड़ी ।

ऐसी परिस्थिति में भारतेन्दु ने जनहृदय से इन पुराने मीठों का मोक्ष दूर करने तथा जनता में नस्साहिय के प्रति रुचि और सात्विक उन्नत भावनाओं का प्रसार करने के लिये पुराने मीठों की शैली पर नवीन सुधारकारी मीठों की रचना का बीड़ा उठाया । उन्होंने सर्वप्रथम बिड़ानों तथा साहित्यकारों के सम्मुख अपनी योजना का इस रूप में प्रस्तुत किया -

"भारतवर्ष की उन्नति के लिये अनेक उपाय महारामायण धात्रकम सोच रहे हैं जिनमें एक और भी उपाय होने की आवश्यकता है । इस विषय के बड़े-बड़े मंग और काम्य प्रकाशित होते हैं बिड़ानु व जनमाया रत्न ने हृष्टिगोचर नहीं होते । हमके हेतु मने साफ है कि जातीय सवात

तब तें पनबट आऊ सखीरी बा जमुना के तीर ।

भरि भरि यमुना समझ बसत है इन मयनन के तीर ॥

हृदय की अनेक प्रकार की अनुभूतियों से युक्त सूर की गोपियों का बिरह धपन आप में झूठा है । उद्यम के समस्त गोपियों ने व्यर्थ्य और हास्यमयी जैसी उक्तियाँ कही हैं उनमें कभी नाश्विदम्बता नहीं अपितु हृदय की बहु मर्ममय पीड़ा छिपी है जिसके कारण दिन-रात एक पल उन्हें नीन नहीं मिलता । हृदय का दर्द हमका हो जाता है यदि कोई उसे सुनने । गोपियों ने उद्यम को अस्ती लीधी मृनाकर अपने हृदय का दर्द हलका किया है ।

प्रेम विधानी मीरा का बिरह सबसे प्रपञ्च है । वह उनके स्वाकुल हृदय की निजी अभिव्यक्ति है । उनके हृदय का दर्द उनके सिवाम कोई नहीं जानता । वह बिचबिचहली है । जब से होश संभाला कृष्ण के बिरह में पावक बनकर लोकात्मक ब्रह्म मर्यादा सबको तिलांजली दे दी । सब प्रकार के कष्ट सहें बबनामी सही किन्तु साधारण कृष्ण से नाता नहीं छोड़ा । धार्मीक उनके बिरह में तड़पती रही । मीरा के प्रेम पीत मत्तों और प्रेमियों के कष्टहार बन गये हैं । इन पीता में नारी हृदय की मार्मिक व्यापक भूतिमयी बिसाई होती है ।

मल्लिकार्जुन के बाप रीतिमूग में नायिकाओं के बिरह का व्यापक वर्णन हुआ किन्तु उसका रूप परिवर्तित हो गया । उद्यम के प्रभाव से नारी की नायकता कोमलता कवियों का सिलबाइ बन गई । झूठी उक्तिओं और ठूँस द्वारा नायिका के बिरह का सापमान मात्र देना उनका कर्तव्य होगया । इन नायिकाओं का बिरह ताप इतना अधिक है कि गाह पूस की ठंडी रातों में भीसे नपड़े पहन कर भी उक्तियाँ उनके पास जाने का साहस नहीं कर पाती । श्रोतवों का गुलाबजल बिरह संतप्त नायिका की क्वास से साप बनकर उड़ जाता है—

घीभाई सीसी मुमक्षि बिरह जरत बिसलात ।

बिच ही मुख गुलाब प्यो छीठ्यो सुयो न पात ।

• पदाकर की सायिका इतनी अचक्यक है कि गर्म स्वास के भोको से घोमे के समान धुल जाती है। रीतिभुग में सर्वत्र इसी प्रकार की गई गई कल्पनाओं द्वारा बिरह का वर्णन हुआ है जगमें वही हृदय की गंभीरता सबेदना और मार्मिकता के दर्शन नहीं होते। रीतिभुगीन नायिकाओं की बिरह वैदना मर्मज्ञ पाठकों का हृदय-स्पर्श करने में सक्षम है।

घाबुनिक भुग में समय और विचार परिवर्तन के साथ बिरह के रूप में पुनः परिवर्तन हुआ। घाबुनिक काव्य में वणित नारी का बिरह बौद्धिक सिद्ध और स्वाधिमान की भावना लिये हुए है। हरिषीय के 'प्रिय प्रकाश' की बिरहिणी राधा कृष्ण के विषय में रोती है संतप्त होती है किन्तु केवल रोने में ही जीवन व्यतीत नहीं कर देती वह कृष्ण के प्रेम में बिर भुगारी रहकर अत्यन्त-हित का श्रवण करके कहती है -

प्यारे जीवें अवहित करे मेह बाहे न भावें।

मेरे जी में हृदय बिजयी निरख का प्रेम जाया।

राष्ट्रीय काव्य के इस भुग में कवियों ने बिरहिणी नायिकाओं को वैय-हित के कारणों तथा परोपकार में संलग्न दिखाया है। बिरहिणी राधा जिजीव्या भूमकर दीन बुद्धियों की सेवा में संलग्न दिखाई देती है। दूसरों की सेवा में उठ कृष्ण मिलन का आनन्द प्राप्त होगा है।

'साकेत' की उमिला तथा 'यशोवरा' की यशोवरा का बिरह वर्णन परम्परा में मिला है। इन दोनों काव्यों में रीतिभुगीकरण युक्त ने घाबुनिक भुग के अनुभूत नारी के भावों को परिधायक किया है। यशोवरा युद्ध की पत्नी है। युद्ध की रणाय तपस्या का वीरव काव्यों में तथा दनिहास में बहुत ऊँचे स्तर में व्यक्त हुआ किन्तु बिरहिणी यशोवरा के बुझने हुए घरमागो और बहन हुए सोमियों का भूस्वादन जिमी ने नहीं किया। युद्धजी ने नारी हृदय की इस नूतन वैदना का समझा

घोर काव्य द्वारा उसे धमिम्यक्ति थी । बुढ़ यशोधरा को छोटी छोड़कर चले गये । जामने पर यशोधरा का संसार लुट गया वह भवेनी रह गई, एक हो महीने या वर्षों के लिये नहीं सदा सदा के लिये । क्या यह छोटी बात थी ? यशोधरा के हृदय पर इसका बिठना आघात हुआ उससे अधिक उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँची । नारी की जीवन की बाधा समझकर चुपके से बुढ़ का चला जाना यशोधरा वैसी पति प्राणा स्त्री के लिये बड़े अपमान की बात थी । वह इस आघात से तिलमिलाने लगी सज्ज से कहती है -

सिद्धि हेतु स्वामी गये यह गौरव की बात ।

पर चोरी चोरी गये यही बड़ा आघात ।

सज्ज ने मुझ से कह कर जाते ।

तो कह क्या मुझको अपनी वे पय बाधा ही पारते ।

भारतीय नारी पति की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता मानती है । समाणियाँ पतियों को लुभी-मुसी बुढ़ के लिये खड़ा कर रख में भेज देती थी फिर नारी से इतना दुराव क्यों ? यशोधरा इसे नहीं सहन कर पाती । वह नियोगिनी बन होवाई हो किन्तु हृदय के स्वाभिमान ने उसके व्यक्तित्व को मिटने नहीं दिया । वह कहती है -

सिद्धि मार्ग की बाधा नारी तो उसकी क्या पति है ।

मे भी नहीं अपनाव जगत् में मेरा भी प्रभु पति है ।

बुढ़ जब सिद्धि प्राप्त करके लौटे तो मामिनी यशोधरा उनके स्वागत के लिय नहीं आई । हृदय में मिसन की आकांक्षा ज्वारमाटे की भाँति समझ रही है किन्तु जब बुढ़ ने उसे बिदा करने का योरव नहीं दिया तो वह उनका स्वागत कैसे करे । वह मन को समझाती है -

हे मन आज परीक्षा लेती ।

बिनती करती हूँ मैं तुम्हसे बात न बिम्बे मेरी ।

हारकर कुछ उमक बरबाजे पर भाते हैं धीर कहते हैं -

मानिनि ! मान तजो सो रही तुम्हारी मान ।

दानिनि ! धाया स्वयं द्वार पर यह तब तब-ममान ।

बिरह बिग्या नारी का यह स्वल्प अपने प्रकार का झूठा है । प्रापुनिक युग की नारी भावना प्राचीन युग से भिन्नान्त भिन्न है बिरह में भी उसके वीरव की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई है ।

'कामायनी' में मनु थड़ा को केवल इमलिये छोड़कर जाने जाने हैं कि वह नव निमु की चिन्ता में भीम है उसे पति की चिन्ता नहीं है लोग बिनास में वह मनु का साथ नहीं देती । पुरुषत्व के अन्विमान में मनु नारी की सत्ता भूल जाते हैं -

मनु तुम थड़ा की गये भूल ।

तुम भूल मय पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की ।

समरमता है संबंध बनी अधिकार धीर अधिकारी की ।

थड़ा मनु के बिरह में बहुत व्यथित थी किन्तु मनु के जीवन में थड़ा का समाज उमक प्याला कटकर है । वे दर-दर की गहरों तक हुए घन्ट में थड़ा की धरण में धाकर ही शान्ति प्राप्त करते हैं । बियोमिनी थड़ा का तन-मन आत्म से भरपूर हो जाता है । यहाँ भी बिरह-बल्लभ में कवि ने नारी के स्वर्ण व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की है । पिछले युगों की बिरहिली नायिकाओं की भाँति नायक के बियोम में इज्जत अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता । धाव का साहित्यकार नारी के बिरह वर्णन में कोरी मायुक्ता का धाधम न निकर उमक पदों पर विचार करता है और युक्तिमय तर्कों में उसका विवेचन करता है । जब बिरह की बहुचर्चित बात बरामों के बगल की अग्रता कवि मय ढंग में नायिका की बिरह-वदना प्रस्तुत करता है । इसमें मायुक्ता और बोद्धिमान दोनों का समान स्थान है ।

छायावादी कविता पर रवीन्द्र का प्रभाव

रबीन्द्र नाथ टैगोर की बहुमुखी प्रतिभा ने भारतीय कला और साहित्य में एक नवीन युग की सृष्टि की है। साहित्य संगीत चित्रकला धर्म दर्शन सभी क्षेत्रों में उनकी प्रभाव पड़ि थी। हिन्दी साहित्य के छायावादी युग पर उनकी कला और विचारों का प्रभाव अत्यन्त लक्षित होता है। छायावादी काव्य की माया सैमी विषय मात्र कला सभी पर रबीन्द्रनाथ टैगोर को स्पष्ट आप है। यों तो २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही नवीन साहित्य और साहित्यकारों ने हिन्दी को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु सन् १९१३ में टैगोर की 'गीतांजलि' पर 'नोबल पुरस्कार' ने नवीन कवियों का ध्यान विशेष रूप से इस ओर आकर्षित किया। बहुतों ने तो 'गीतांजलि' की अपनी आवर्ण मानकर उसी ढंग की रचनाएँ हिन्दी में की।

विशेषी-युग की इतिवृत्तात्मकता तथा नैतिकता से ऊँचकर छायावादी कवियों ने काव्य में जिस प्रकार की गीतात्मक और अभिव्यञ्जनार्थक ध्वनी का अपनाया उसकी पृष्ठभूमि में रबीन्द्र का महत्त्वपूर्ण योग है। छायावादी काव्य में नारी सौन्दर्य प्रेम भावि की व्यक्तता का प्राधान्य उसी का परिणाम है।

नारी के विषय में रबीन्द्र के विचार बड़े आदर्श तथा कोमल थे। वे नारी को ईश्वर की विभूति तथा सृष्टि की समुत्थीयतम वस्तु मानते थे। उनके विचार में नारी सौन्दर्य प्रेम करण्य ममता की छायाय भूति है। उन्होंने 'उर्वसी' प्रेमेर अभिषेक 'बुल्लारी चिन्ता' 'मानसी' आदि कविताओं में अपने उन्ही भावों को प्रकट किया है। छायावादी प्रमुख कवि प्रसार पन्त निराला आदि की नारी विषयक कविताओं में इसके

उदाहरण प्रचुर भाषा में मिलते हैं। रवीन्द्र की उर्ध्वशी के कुछ भाष 'पल' की 'भाकी पल' की इन पंक्तियों में संक्षिप्त हैं—

संक्षिप्त ज्योत्स्ना सी बुधपाप
जड़ित बह नमिल पलक हृत्पात
पास बस था न सकोगी प्राण!

अपसंकर प्रसाद की 'देव भाषा' छीपेक कविता में भारी की परिवर्तता और मधुरिमा का चित्रण समझम उसी प्रकार का है—

मुरझी तो यह विमल धारा है
स्नेह-जल सी यह नयन धारा है।
छीम-निमि का यह मुडर मोती है।
मधुरिमा इतनी कहाँ होती है।

प्रेम और सौम्यता की उपासना तथा रहस्यवादी भावना छमाबार की प्रमुख विशेषता है और यह विशेषता रवीन्द्र की कलाप्रियता और विचार से प्रभावित है। अमल के प्रति जिज्ञासा निरुपद्रव और मिसल का जैसा भाव रवीन्द्र की निम्न पंक्तियों में है—

न जाने कितनी सुबह धाम मैंने तुम्हारी पगध्वनि सुनी है और तुम्हारे
संज्ञा बाहक मैं धीरे हृदय में धाकर मुझे निहित रूप से पुकारा -----
केवल मैं ही प्रतीक्षा में होता और व्यस की आकांक्षा में तिम-तिम करके
अपना हृदय अलाता रूँगा ----- क्या तुमने उसकी सीन पगध्वनि
नही सुनी वह अज्ञा है धाना ही रहता है। प्रतिपाल प्रतिपुत्र प्रतिनि
और प्रतिरात-----।”

यही भाष महादेवी की रचनाओं में समित्त होते हैं। वे प्रिय के वियोग में अर्गंड वियोगिनी और अर्गंड मुहागिनी हैं। उनकी 'मुम्हाना अवेन मरा नम क्या प्रिय धामे बाने है तथा 'मैं नीर मरी बुग की बरनी' धारि रचनाएँ इसी प्रकार की हैं। 'पल' की 'मेल निमबल धारि व विनाशों में रहस्यवादी भाव अवित्त हैं।

युग और कला इस युग के कवियों का प्रधान विषय है। रबीन्द्र के हृदय में जिस प्रकार एक विषादिनी मारी विषमग्न रहती थी वे कवि भी 'विरही होया पहुला कवि' का भाव लेकर बने हैं।

इसके अतिरिक्त छायावादी कविता की भाषा हीन पर भी रबीन्द्र का प्रभाव है। गीत गीतमाल्य भावमाल्य आदि रचनायें कुछ सीमा तक उसी का परिणाम हैं। इस युग के काव्य में बेयत्ता बढ़ गई है। भाषा में बगला शब्दों का प्रचलन भी अधिक है। छायावादी कवि भारतीय और पारश्चात्य संस्कृति के सम्मेलन का ज्ञान वही सिद्धांत लेकर बने हैं जो रबीन्द्र का धारण का। पंथ की 'उयोत्सना' तथा प्रसाद की 'कामना' इसका उत्तम उदाहरण है। इस भाँति छायावादी युग कबीन्द्र रबीन्द्र का बहुत बहुरी है। उन्होंने साहित्य में नवीनता का प्रयोग करने प्रम्य भारतीय भाषाओं को नव निर्मल का स्वरूप दिया। भारतीय कलाओं और साहित्य पर रबीन्द्रनाथ टैगोर के पुनर्जागरण का अत्यन्त ही महिमा छाप है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति हमारा व्यवहार

सन् १९१० में भारतीय सविधान में हिन्दी को स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का निर्णय हुआ था। उसी समय यह निश्चय हुआ था कि सविधान का यह निर्णय ११ वष बाद अर्थात् २१ जनवरी सन् १९२१ से कार्यरूप में परिणत किया जायेगा। इस निश्चय के पीछे उस समय कुछ लोगों के तर्क थे कि सभी हिन्दी में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह एकदम धर्म को को अपवर्त्म कर राष्ट्रभाषा का बूझ मार अपने ऊपर से सके उसमें पारिवारिक शब्दों का प्रभाव है विज्ञान सम्बन्धी विषयों का अध्यापन हिन्दी द्वारा नहीं हो सकता हिन्दी का साहित्य भी बहुत ऊँचा और विस्तृत नहीं है दक्षिण भारतीय लोगों को उसे समझने और प्रयोग करने में कठिनाई होती है, आदि आदि। ११ वर्ष की इस अवधि में हिन्दी की उपर्युक्त कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न किया जायगा और तब हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहृत हो सकेगी।

उक्त समय की गई ११ वर्ष की यह लम्बी अवधि किसी भी प्रकार हिन्दी के हित में सिद्ध नहीं हुई। इसके कारण राष्ट्रभाषा के प्रचार में कई प्रकार की बाधनें उत्पन्न हुई। किसी भाषा का प्रचार या निग्रह उसके निरन्तर प्रयोग द्वारा होता है। यदि उसके स्थान पर या उसके साथ-साथ दूसरी किसी भाषा का प्रयोग चलता रहे तो अन्त में कभी यह सम्भवा नहीं जाती कि वह स्वतंत्र रूप से प्रमाणनिक कारणों के निम्ने प्रयोग मध्य रात्र के पारम्परिक व्यवहार के साथ उपयुक्त मिल हो सके। कठिनाई महत्तर ही तब प्रकार समुप्य में जायसमता आती है उसी प्रकार निरन्तर व्यवहार में ही भाषा जायसम बन पाती है। उसके निम्ने बरों या मर्गियों की अवधि की आवश्यकता नहीं होती। बल्कि दूसरी-दूसरी भाषा

बोलते-बोलते स्वतः वाक्य रचना करने लगता है। उसे व्याकरणानुसार की अपेक्षा नहीं होती। किसी भाषा के प्रसार में उसका निरन्तर प्रयोग कियेना महत्वपूर्ण होता है इसका उदाहरण इंग्लैंड में अंग्रेजी का प्रचार है।

१४वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक इंग्लैंड में सम्पूर्ण प्रशासनिक कार्य फ्रेंच और नेटिन भाषा में होता था। शासकों की भाषा फ्रेंच थी। जन भाषा होने पर भी अंग्रेजी को इंग्लैंड में अत्यन्त बड़ी स्थान प्राप्त था जो भारत में भारतीय भाषाओं को है। वहाँ लोग अपनी मातृभाषा छोड़ कर फ्रेंच पढ़ना गौरव समझते थे। सम्य सोचों की भाषा फ्रेंच मानी जाती थी अतः अनेक परिवारों के बच्चे फ्रेंच स्कूलों में पढ़ते थे और अंग्रेजी बोलना अपना अपमान समझते थे। इस मानसिक दासता से छुटकारा पाने के लिये सन् १३६२ ई. में पार्लियामेंट ने एक अधिनियम बनाकर अंग्रेजी का प्रयोग जामू किया। किन्तु अनिवार्य न होने के कारण लोगों ने अंग्रेजी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। सत्ताधारियों तथा कुलीन वर्गों ने अंग्रेजी के विकृत नामा प्रकार के तर्क लेकर फ्रेंच की सत्ता बनाये रखने की भी ठोड़ कोशिश की। तब सन् १७३१ ई. में दूसरा अधिनियम बना जिसमें अंग्रेजी का प्रयोग न केवल अनिवार्य कर दिया गया अपितु अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के प्रयोग पर बन्द विधान किया गया। इस के बाव अंग्रेजी अपनी पूर्व स्थिति में जाड़े जैसी भी अविकसित भाषा थी अनिवार्य प्रयोग से उसमें सब प्रकार के प्रशासनिक कार्य का सुचारु रूप से चलाने की क्षमता आ गई। धीरे धीरे बहुत न केवल इंग्लैंड की अपितु बेश विदेशों की राजभाषा बनने का भी गौरव प्राप्त कर सकी। कहने का तात्पर्य यह है कि जो भाषाओं का विकास मुख्य भाषा की स्थिति को निर्बल बनाता है तथा उसके प्रचार और प्रसार में रुकावट उत्पन्न करता है। हिन्दी ११ वर्ष के पश्चात् भी राजभाषा होने के लिये उपयुक्त सिद्ध नहीं हो रही है इसका एकमात्र कारण अंग्रेजी की उसकी सह-भाषा बनाना है। यदि प्रारम्भ से हिन्दी का प्रयोग

धामू कर दिया जाता ता माया की जो समस्या धात्र उत्पन्न हुई है, कभी नहीं होती। इस दृष्टि से १५ वर्षों की अवधि हिन्दी के प्रचार में रकाबट निड हुई। इन १५ वर्षों में प्रथम माया बनी रही और हिन्दी उसकी सहमाया के रूप में या कहिये नहीं के बराबर प्रयुक्त हुई। प्राँतों में विविध प्रांतीय मायाओं का प्रचलन हो सकता है किन्तु जो माया सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती हो या जो देश की एकता की प्रतीक हो वह एक ही होनी चाहिये। देश का सारा काम उन्हीं में होना आवश्यक है।

दूसरी हानि जो इस अवधि के कारण हुई वह यह कि इस सम्बन्ध काल में देश में राष्ट्रमाया की अनिवार्यता का महत्व बराबर कम होता गया। १५ वर्षों में देश का बातावरण बदल गया। एक सवे हुये बाता-वरण में जो कार्य सामान्य से सम्पन्न हो जाता है समय बीतने पर उसमें लाभ बिम्ब उत्पन्न हो जाते हैं। 'शुभस्य सीधम्' का सिद्धांत हमीनिबे प्रतिष्ठ है। शुभ कार्य में बेरी ठीक नहीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ वर्षों तक देश का बातावरण बड़ा मधुर हुआ था। देशवासियों में एक अनोखा उत्साह और देश के लिये कुछ करने की साध थी। सर्वत्र राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान थी। उन समय यदि हिन्दी का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता तो किसी को इसकी आपत्ति न होती। लोग देश के प्रति अपना वस्तुस्थ मानकर उसे स्वीकार करते। किन्तु १५ वर्षों में देश की स्थिति बहुत कुछ बदल गई। धात्र सर्वत्र आशावादी स्वार्थपरता और प्रांतीयता का कियेना बातावरण व्याप्त है। तब तक पहुँचकर मायना का महत्व शून्य हो गया है। स्वार्थ के ऊँचे ज्वनो में पनकर मोर्कों की राष्ट्रीय महत्व के प्रश्न बहुत कुछ और बीने दिगार्द भन सगे हैं। नविधान के प्रति भी जनता की आस्था वह नहीं है जो धात्र में १५ वर्ष पूर्व थी। ऐसी स्थिति में राष्ट्रमाया का वह १५ वर्ष पुराना मरम्भ नाकार होने की ओरता निरन्तर कल्पना का ऐसा गिमीना बनता जा रहा है जिसने लाभ मनचाहा गिनबाहु कर रहे हैं। कुछ लोग धात्र भी

कहते हैं कि हिन्दी किसी पर थोपनी नहीं चाहिये। बीरे-बीरे उसका प्रयोग कीजिये। कुछ कहते हैं जब तक महिम्नी भाषी स्वयं स्वीकार न करें, हिन्दी उनके लिये अनिवार्य नहीं होनी चाहिये। इन्हीं मुनेश कपय्य के नेता भी भग्नाधुराई चाहते हैं कि जब तक संविधान में स्वीकृत १४ भाषाएँ राजभाषा न बन जायें तब तक अंग्रेजी ही राजभाषा के रूप में जारी रहनी चाहिये।

ऐसे विघ्न-निघ्न विचार वाले लोगों के मर्तों को स्वीकार कर यदि राजभाषा के प्रश्न को सुलझाया जाय तो संभवतः सत्ताश्रितों तक यह समस्या हल नहीं हो सकेगी। जो सोच हिन्दी से घृणा करते हैं वे १२ वर्ष में क्या बहुत अन्तर्गत भी हिन्दी नहीं सीख सकते। जबकि जो १२ वर्ष में हिन्दी का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके वे धीरे प्राप्त कर सकेंगे इसकी भी क्या डारण्टी है? सत्य बात यह है कि हिन्दी भाषा की कठिनाई या भ्रमभ्रंश उसे स्वीकार करने में रुकावट नहीं है अपितु वास्तविक रुकावट है—राजनैतिक सांस्कृतिक प्रांतीय धीर उन्मूलन की समस्याएँ। संघर्षाधीन मतवालय भाषाओं में संस्कृत के इतने खम्ब हैं कि इन प्रांतों का हिन्दी सीखने में यत्निक कठिनाई नहीं होकर कोई सीखना चाहिए तब न। बहुत से लोगों का कहना है कि भाषा का यह प्रांतोत्पन्न जो २६ जनवरी के बाद हुआ प्रायः धीरे इन्हीं जातिधर्मों का ३००० वर्ष पुराना भ्रम है। यदि हिन्दी से ही उनका विरोध होता तो वे राष्ट्रीय ध्वज का अपमान क्यों करते? अंग्रेजी के पुस्तकालय क्यों जलाते? धीरे विध्वंसकारक तात्त्विकों की क्यों 'धपलाते'? या भी हो १२ वर्ष की अवधि ही राष्ट्रभाषा आन्दोलन की उत्तरदायी है।

अब तब कुछ होते हुए भी यदि सरकार को बाध्य होकर १२ वर्ष की अवधि राजभाषा के प्रयोग के लिये बेनी पड़ी भी तो उसका कर्तव्य था कि उस विद्या में बहुत अभिय धीरे ठोस कार्य करती। हिन्दी के प्रचार के लिये बहुमुखी प्रयत्न करना जासकों व जनता दोनों का परम कर्तव्य था। किन्तु यह है कि इन अवधि में हिन्दी के प्रचार और विकास के

सिये किसी प्रकार का समुचित प्रयत्न नहीं हुआ। विदेशी भाषा की बासता से मुक्ति दिलाने में सरकार की पूर्ण उपेक्षा रही। स्वतन्त्रता के १५ वर्ष बाद जनता ने यह भी धमूमब नहीं किया कि देश में आजादी पार्स है और विदेशियों से उन्हें मुक्ति मिली है। भाषा बेमामूपा खानपान खून-सहन, आचार-व्यवहार और पठन-पाठन में अंग्रेजी राज्य के बाद और अधिक अंग्रेजिबत भारत में फैली है। अंग्रेजी राज्य में बच्चों के सिये इतने अंग्रेजी स्कूल नहीं थे जितने स्वतन्त्र भारत में खुले। लोग कटु ठाकर पेट काटकर भी अधिक फीस वाले अंग्रेजी स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाने के सिये विवश हो गये हैं क्योंकि वे जानते हैं कि भारत में बच्चों का अग्रगण्य अभिप्य अंग्रेजी पर निर्भर है। बड़ी नीकटी अंधा पद अंग्रेजी जानने वालों को विमता है तब भारतीय भाषायें और विशेष कर हिन्दी पढ़ाकर उनका अभिप्य क्यों बिगाड़ा जाय ? स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी की जितनी उपसा हुई है पहले कमी नहीं हुई थी। स्वतन्त्रता से पूर्व लोग विदेशी भाषकों की भाषा से शृणा करत थे और अपने बच्चों को हिन्दी संस्कृत पढ़ाना औरत की बात समझते थे किन्तु स्वतन्त्र भारत में हिन्दी में पढ़ना पढ़ाना सीखना और सिलना हीनता का पर्यायवाची बन गया है। हिन्दी हीन मनोकृति की मूकक मानी जाने लगी है। अतः को लोग अग्रणी हिन्दी जानते हैं और जिन्हें उसके साहित्य का अग्रगण्य ज्ञान है वे भी हिन्दी से ऐसे कतराते हैं जहाँ हिन्दी बोलना असम्भ्यता का लक्षण या भ्रमता की निशानी है। बहुत से लोगों की तो यह धारणा है कि बिठ्ठा की एवमात्र बसोती अंग्रेजी है। जितनी प्रतिभा जितना ज्ञान विरत में है वह सब अंग्रेजी की मपीती है, जो इससे दूर है वह असम्भ्य है भ्रम है और समय की कति से दूर है। ऐसे लोग हिन्दी के नाम पर मुंह बनाते हैं और उसके साहित्य की हंसी उड़ाने हैं। आश्चर्य तो यह कि जिन्हें हिन्दी का तमिष भी ज्ञान नहीं है भी हिन्दी साहित्य और हिन्दी की प्रकृति की इस अविचार से बुराई करते हैं जहाँ के ही सरस्वती का बरत पुत्र है।

संसार में भारत के घटिरिक्त जगह कोई ऐसा स्वतंत्र देश नहीं मिलेगा जहाँ की राष्ट्रभाषा कोई बिदेसी भाषा हो और भारत के घटिरिक्त ऐसा भी कोई देश नहीं होगा जिसे बिदेसी भाषा है इतना प्यार और देशीय भाषाओं से इतनी श्रृंखला हो। संसार में सम्मता और संस्कृति का आलोक फैलाने वाला देश भाषा के लिये परमुखापेसी हो यह कैसी बिहम्बना है। जिस देश की संस्कृति भाषा को बिषय की अधिकतर भाषाओं की बनती होने का पीरस प्राप्त हो उसके निवासी किसी बिदेसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए हिसात्मक आंदोलन करें, अर्थात् उपद्रव मचायें राष्ट्रताका और राष्ट्र के संबिधान का अपमान करें, देश की एकता भंग करने का पक्षपात करें इससे बढ़कर आवश्यक और क्या हो सकता है ? यह एक स्वतंत्र देश के गौरव के अनुरूप कार्य नहीं है। राष्ट्र का सम्मान प्रत्येक देशवासी का सम्मान है। उसे किसी भी मूर्ख पर गिराना अर्थात् नैतिक अपराध है। राष्ट्रद्रोह है। यदि भारतीय भाषाओं में से किसी एसी भाषा को राष्ट्रभाषा का पद दिया जाता जो इस योग्य न होती तो जनता का किसी भाषा में बिरोध उचित भी था किन्तु हिन्दी राष्ट्र की ४२ प्रतिशत जनता की भाषा है। उत्तर से दक्षिण तक पूर्व से पश्चिम तक भारत का कोई ऐसा कोना नहीं जहाँ हिन्दी बोली और समझी न जाती हो। सत्य बिरोधाभास के स्वीकार किया है कि हिन्दी का माध्यम से ही वे समस्त भारतवासियों को अपने बिचारों से अवगत करा सके हैं हिन्दी का बिना उनकी परधाना और उनका बुद्धिमान आन्दोलन असफल सिद्ध होता। यही एक ऐसी भाषा है जिसके जानने वालों की संख्या भारतवर्ष में सबसे अधिक है। हिन्दी किसी प्रान्त बिरोध की भाषा नहीं है। उसकी प्रकृति जनतन्त्रात्मक है। वह बहुत आसानी से सीखी और पढ़ी जा सकती है। इसके घटिरिक्त हिन्दी संस्कृति की धीरस पुत्री है। भारत की अल्प सब भाषाओं में संस्कृति अल्प बिद्यमान है अतः प्रत्येक भाषा भाषी के लिये इसे पढ़ना और सीखना सर्वाधिक सरल है।

दूसरी बात हिन्दी ने राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा की है। स्वतन्त्रता संग्राम में देश के एक कोने से दूसरे कोने तक राष्ट्रीय भावनाओं को फैलाने वाली भाषा हिन्दी है। पंजाब बंगाल, गुजरात तथा दक्षिण के नेताओं ने इसे बराबर महत्व दिया। सबसे इसका व्यावहारिक किया और यथार्थतः इसके प्रसार का प्रयत्न किया। महात्मा गाँधी ने गुजराती छोड़ कर ही देश की एकता और भारतीयता की रक्षा के लिये अपने आन्दोलन में हिन्दी को प्रमुख स्थान दिया। वे चाहते थे कि अंग्रेज उसे ही देश में उठा बने रहें किन्तु अंग्रेजी भाषा खीझ से खीझ इस देश से बिदा हो जानी चाहिए। अंग्रेजी में वास्तव की गंध है और पश्चिमी सभ्यता की संज्ञाभङ्ग बीमार है। यह देशवासियों को देश के प्रति ईमानदार नहीं बनने देती।

अंग्रेजी ने देश का चित्रण प्रकट किया है इस पर यदि तुमने हृदय से विचार करें तो पावेंगे कि अंग्रेजी के कारण देश का विद्या स्तर नित्य प्रति विरुद्ध था रहा है। विद्यार्थी को अंग्रेजी पढ़नी नहीं उसे जानने के प्रयास में उसके प्रायः विषय कोशित रह जाते हैं। विद्या स्तर निरने की और छात्र छात्राओं की पढ़ने में रुचि न होने की सिक्कामत सब धोर से मुगई देती है किन्तु रोग कहाँ है इसे जानकर भी उस धार से घातें बन्द कर ली जाती हैं। जो प्रतिष्ठित अंग्रेजी जाननेवालों ने अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति में देश की सभ्यता संस्कृति, पंचवर्षीय योजनाओं आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में देश की बहुत आर्थिक क्षति की है। भारत की एक प्रतिष्ठित व्यक्ता जिस भाषा को न समझनी हूँ उसमें शासन कार्य बनाने वाली सरकार नहीं तक सफल हुई है और देश में चितनी प्रगति की है यह भारत की अक्षमाल स्थिति को देखकर बहुत स्पष्ट भावूम हो जाता है। चीन के प्राक्कमण से भारत पर लंबट के जो बाले भारत में डराये उत्तममय अंग्रेजी का महत्व नजाने नहीं विलुप्त हो गया। उन दिनों सरकार की भाषा नीति एकरूप परिवर्तित होगई थी। आजादवाली के कार्यक्रमों में उन दिनों हिन्दी की देश प्रेम की कविताओं आनृभूमि की

प्रशस्तियों भारतीय संस्कृति और वीरता संबंधी हिन्दी भाषाओं की पुनर्
मन्त्री रहती थी। उस समय हिन्दी भारतीय एकता का प्रतीक बन गई
थी। राष्ट्र के प्रति कर्तव्य का आह्वान हिन्दी में किया जाता था। हिन्दी
भाषाओं और हिन्दी कविताओं ने उस समय देश में कैसा आता-बरा
बनाया यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। देश पर अनिष्ट होने के लिये
हिन्दी में गारे लगने हैं और जब छवि पदों का प्रश्न आता है तब अंग्रेजी
की अन्तर्राष्ट्रीयता की पुर्खाई देकर सामान्य जनता के सामान्य दुःख दिये
जाते हैं। भाषा के संबंध में सरकार की यह सोचनी नीति बड़ी गलत है।

इसमें ठीक भी समझ नहीं कि जब तक अंग्रेजी भारत पर छाई
रहेगी न भारत में वैज्ञानिक प्रगति होगी और न भारत की किसी भाषा
का समुचित विकास होगा। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं क्यों सफल नहीं
होती? अंग्रेजी के कारण। अंग्रेजी में वैज्ञानिकों के हृदय से देशप्रेम की
भावना बड़े मूल से क्षिप्त कर दी है। बड़े बड़े बाँवों में हटारें घाटी हैं
क्यों? इसलिये कि हमें देश से प्रेम नहीं वैसे से प्रेम है। हम अपनी
मातृभूमि की रक्षा में उत्तर नहीं। हमें यहाँ की भूमि से प्यार नहीं।
प्यार इसलिये नहीं कि हमें इसकी शिक्षा नहीं मिलती। हम इतिहास पर
इंग्लैंड का हम साहित्य पर अंग्रेजी का वैयक्तिक और वर्ग बुद्धि से कोठों
दूर रखे जायें तब देश के लिये प्यार कहाँ से उत्पन्न हो? भारत की
वर्तमान पीढ़ी समाज और महामातृ के नाम और पुत्र के नाम से घन
भिन्न है, वह समाज में अर्जुन-सुर्योन्नत में अन्तर नहीं जानती वह
भारत की गरिबी पहाड़ों के नाम नहीं जानती। तब देश के विकास में
उसका हृदय और शरीर कैसे रहता है? अन्तर्राष्ट्रीयता के चक्कर में
हमारी राष्ट्रीयता नित्यप्रति क्षिप्त होती जा रही है और हम इस ओर से
असावधान हैं। एक राष्ट्रभाषा के पीछे राष्ट्र के बहुत से प्रश्न संलग्न
हैं। यह हमारी सभ्यता और संस्कृति का प्रश्न है, देश के प्रति प्रेम और
कर्तव्य की भावना का प्रश्न है, शिक्षा स्तर का पंचवर्षीय योजनाओं का
और सामाजिक स्थिति का प्रश्न है। जहाँ देशों में वैज्ञानिक प्रगति

सबसे ऊँचे स्तर पर हुई है और वही देश भाव के युग में सबसे प्रागे बढ़े हुए है जिसमें बड़ी मापामों को सर्वोपरि स्थान मिला है। इस वास्तवों को अपनी मापा से बहुत प्यार है। जापान चीन आदि देशों में सारा कार्य उनकी अपनी भाषा में होता है। दूसरे के शब्द को लेकर अपने को हीन समझने की आदत हममें नहीं है। हमी के निरन्तर प्रयत्नशील है। संश्लेषी का साहित्य सुन्दर है, वह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है इसलिये अपनी भाषा में महत्त्वहीन है यह सोचना भारत जैसे स्वानिमानी स्वतंत्र राष्ट्र के लिये सामग्रीय नहीं है। जो लोग संश्लेषी के साहित्य पर मुक्त हैं वे प्रसन्नतापूर्वक उसका अध्ययन करें। उसमें उन्हें किसी प्रकार की रूकावट नहीं होनी चाहिये किन्तु राष्ट्र के लिये उसकी उपयोगिता सिद्ध करने का वास्तविक प्रयत्न उन्हें नहीं करना चाहिये। देश के स्वाभिमान की रक्षा के लिये भारतीय भाषा ही राष्ट्रभाषा होनी आवश्यक है। राष्ट्र का शौर्य इसी में है। अजबर्ती उपयोगिताकार्य को भाव किन्हीं राजनैतिक कारणों से कट्टर हिन्दी विरोधी बन गये हैं बहुत समय तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयत्न पराजयी थे। उन्होंने स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद बराबर इस बात पर जोर दिया कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होनी चाहिये। मार्च १९२६ में उन्होंने 'मद्रास टीचर्स एसोसिएशन' के सम्मेलन में भाषण करते हुए कहा था -

“राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा व्यापारिक सभी दृष्टियों से हिन्दी बसिण भारत के स्तुभों के वास्तविकता का एक प्रतिबिम्ब होनी चाहिये ----- सभी बसिण भाषाओं का हिन्दी सीखनी चाहिये क्योंकि भारत में किसी भी प्रकार की जनताधिक सरकार बनेगी तो हिन्दी ही केवल राष्ट्रीय भाषा हो सकेगी।”

उसी दिनों अर्थात् सन् १९२६ में राजाजी ने जितनी दूरदृष्टिता से हिन्दी की आवश्यकता अनुभव की थी यह उनके निम्न कथन से स्पष्ट होता है। “इष्टतम मैगनम पेंसिविज” नामक संस्था में राजाजी ने कहा था :-

“अंग्रेजी भारत की राजकीय भाषा अभी तक रह सकती है जब तक अंग्रेज यहाँ हैं। जब राजसत्ता भारतीय लोगों के हाथ में आयेगी तब अंग्रेजी को बाटी रखने से नेताओं और अधिकारियों पर जनता का नियंत्रण कमजोर पड़ जायगा और सत्ताधारी वर्ग सर्वोत्कर्ष बन बैठेगा”।^१
 “बहुतशील शासन प्रणाली में एक अंग्रेजी सरकार के लिये यह आवश्यक है कि उससे अधिकारी जनता से सम्पर्क स्थापित करें। इसके लिये भारतीय सरकार को कोई भारतीय भाषा चुननी चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि हिन्दुस्तानी या हिन्दी ही इसके लिये चुनी जानी चाहिये यही एक ऐसी भाषा है जो भारत में सर्वाधिक संख्या में बोली और समझी जाती है। यही भारत की जनभाषा है।”^२

राजाजी ने अग्रिम भारतीय भाषाओं का विवरण देते हुए कहा था कि हिन्दी ही ऐसी भाषा है जिसे बंगाली भरपूरी बुजुर्गों और इसी प्रकार के अन्य भाषा-भाषी लोग बड़ी आसानी से सीख सकते हैं। वे चाहते थे कि बलिष्ठ भारत में अनिवार्य हिन्दी योजना लागू की जानी चाहिये। इस दृष्टि से देखने पर राष्ट्रभाषा की अनिवार्यता और उसमें हिन्दी की प्रमुखता स्वतः स्पष्ट हो जाती है। राजाजी ही नहीं देश के प्रायः सभी नेताओं ने तथा देश के उन्नायकों ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का समर्थन किया है। आज हिन्दी के विषय में नेताओं को इतनी निष्पक्ष

1. English is necessarily the language of the administration so long as it is conducted by Englishmen. But when power is transferred to the people of this country the continuance of English would serve to weaken the control of the people over their representatives and servants and give exclusive power to a cast of mandarins.

2. It is essential of good government in democratic forms that the authorities should be in touch with the people. We must choose some Indian language as the Language of Government of India. It is obvious that the choice must be Hindustani... .. Hindustani is the Language spoken and understood by the largest number in India, and is more or less already the Lingua Franca.

घौर इतना संकोच क्यों है ? माया के प्रश्न पर इतनी हीम क्यों सी जा रही है ? यह प्रश्न केवल भारत में ही नहीं देश विदेशों में पर्चा का विषय बन गया है । विदेशी सोय हिन्दी सम्बन्धी आन्दोलनों से चकिष्ट हैं । वे समझ नहीं पाते कि देश में हिन्दी का इतना विरोध क्यों है ? जब दूसरे राष्ट्र हिन्दी के लिये पूरक विभाग खोल रहे हैं हिन्दी कमियों और लैबनों पर खोब कार्य कर रहे हैं तब भारत में *English ever Hindi never* के नारे क्यों लगाये जा रहे हैं ? जनता को हिन्दी के विरुद्ध क्यों भड़काया जा रहा है ? माया की यह ससंसारिक स्थिति शीघ्र समाप्त होनी चाहिये ।

बैस से सँवेजी की दासता शीघ्र समाप्त हो हमें इसका प्रयत्न करना चाहिये । राष्ट्र का दीरघ इसी में है कि हमारी राष्ट्रभाषा अपने बैस की भाषा हो । बिना किसी बड़ी भाषा की राष्ट्रभाषा का स्थान दिये हम दीरघदासी देशों में अपनी मरणा नहीं कर सकते । हमें अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी का जिसे संविधान ने बैस के उच्चकोटि के नेताओं ने प्रदान किया सम्मान करना चाहिये । इसी भाषा के माध्यम से हम सम्पूर्ण भारतवर्ष में भावनात्मक एकता स्थापित करने में समर्थ हो सकते हैं । इसी के द्वारा हमारी वैज्ञानिक आर्थिक शैक्षणिक और सामाजिक प्रगति हो सकती है । हिन्दी के विकास से अन्य भारतीय भाषाओं को भी प्रोत्साहन मिलेगा । देश की उन्नति के लिये हमें चिन्ता ही बड़ा स्वाम क्यों न करना पड़े उसके लिये सबैक तैयार रहना होगा । शुद्ध स्वार्थों के बड़ीभूत हो देश की एकाता को नष्ट करना सर्वप्रथम है । हम परस्पर मिश्रकर प्रण करें कि अपने वैज्ञानिक व्यवहार तथा अन्य कार्यों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रयोग करेंगे और रहेंगे ~

‘निजामी हिन्द के हम हैं हमें है मुग़लकी हिन्दी’

हिन्दी-कविता के विविध काल

किसी भाषा के साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व उस भाषा की उत्पत्ति और विकास का सामान्य ज्ञान साहित्य के विद्यार्थी के लिये आवश्यक होता है। भाषा की प्रकृति और स्वरूप को जाने बिना उसके साहित्य का पूरा ज्ञान नहीं लिया जा सकता। भाषा के विकास में संस्कृति, जनजाति, नई आविष्कारों का सम्पर्क, रहस्य, सहन तथा विभिन्न परिस्थितियों का बड़ा हाथ रहता है। प्रत्येक भाषा की उत्पत्ति और विकास की एक दीर्घ परंपरा होती है। हिन्दी भाषा को वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने में युगों की लम्बी परंपरा पार करनी पड़ी है।

वैदिक और लौकिक संस्कृत

हिन्दी का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद की ऋचाओं में प्राप्त होता है। यही भारत की प्राचीन भाषा थी जो वैदिक संस्कृत कहलाती है। सारे उत्तर भारत में वहाँ की साहित्यिक भाषा यही थी। ऋग्वेद की इस 'वैदिक संस्कृत' के प्रतिरिक्त सामान्य जनता में बोलचाल की जो भाषा प्रचलित थी वह 'लौकिक संस्कृत' कहली जाती थी। यह भाषा साहित्य की भाषा की प्रेरणा प्रबल करती थी। बोलचाल की भाषा कभी एक स्वरूप में स्थिर नहीं रहती उसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। शब्दों, क्रियाओं तथा उच्चारण स्थानों में परिवर्तन हो जाता है। लौकिक संस्कृत भी इसी नियम के अनुसार परिवर्तित होती रही। सातवीं या आठवीं शती ईसा पूर्व में पाणिनि ने व्याकरण के नियमों द्वारा परिवर्तन के इस प्रवाह को रोकने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न के फलस्वरूप 'लौकिक संस्कृत' व्याकरणबद्ध होकर साहित्य की भाषा बन गई जिसमें कालिदास भारतीय प्रभुत्व प्राप्ति के उच्च काल के साहित्य की रचना की पर जनता के बीच बोली जाने वाली भाषा का स्वरूप बराबर बदलता गया।

प्राकृत भाषाएँ

विद्वानों ने जनप्रचलित इस परिवर्तित भाषा को प्राकृत नाम दिया। प्राकृत भाषा सामान्य या प्राकृत जनता की भाषा थी। प्राकृत भाषा का जन्मता में अधिक प्रकार देवकीर महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेश इसी भाषा में दिये। आगे चलकर तीसरी सदी ईसा पूर्व में अशोक ने अपने प्रिसामेल भी इसी भाषा में लिखाया। इस प्राकृत भाषा का नाम 'पासी' है। धीरे धीरे यही 'पासी' साहित्य की भाषा बन गई और अधिकतर बौद्ध साहित्य इसी में लिखा गया। साहित्यिक भाषा बनने पर 'पासी' को भी व्याकरण बद्ध कर दिया गया किन्तु जनभाषा अभी रूप में परिवर्तित होती रही। बहुत अधिक बड़े भूभाग की भाषा होने के कारण प्राकृत में जनबाहु तथा विभिन्न प्रान्तों की परिस्थितियों के अनुसार कुछ भेद दिखाई देने लगे जिससे विद्वानों ने इसके चार भेद किये।

(१) मागधी प्राकृत

(३) शौरसेनी प्राकृत

(२) पद्य-मागधी प्राकृत

(४) महाराष्ट्री प्राकृत

अपभ्रंश भाषाएँ

इही प्राकृत भाषाओं से आगे चलकर चार प्रकार की अपभ्रंश भाषाओं की उत्पत्ति हुई। मागधी-अपभ्रंश अथ-मागधी-अपभ्रंश शौरसेनी-अपभ्रंश और महाराष्ट्री-अपभ्रंश। अपभ्रंश का अर्थ है धरा मल या बिहून। किन्तु बाद में यही शब्द भाषा का खोतल बन गया। अपभ्रंश में भी साहित्य की रचना होने लगी। बज्जमाणी सिद्धों का साहित्य इसी भाषा में लिखा हुआ है। बौद्धों और जनों के परवर्ती धार्मिक साहित्य की भी यही भाषा है। इस भाषा का समय ३०० ई० से १००० ई० तक है।

धार्मुनिक भारतीय धार्मिक भाषाएँ

भारत की अनेक धार्मुनिक धर्म भाषाओं की उत्पत्ति अपभ्रंश से हुई है। मागधी-अपभ्रंश से बज्जमा उड़िया यातापी और बिहारी (बगही

मैथिली भोजपुरी) भाषाओं का जन्म हुआ। अठ्ठमागधी से पूर्वी हिन्दी (घबधी बघेसी छत्तीसगढ़ी) का जन्म हुआ। गौरसेनी-अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी (बड़ीबोली ब्रजभाषा बुन्देलखण्डी) राजस्थानी वंजारी मुबराठी आदि की उत्पत्ति हुई। महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी निकली। इस माँति भारत की समस्त धार्य भाषाओं की अन्तनी अपभ्रंश है जो अपने पूर्व रूप में संस्कृत की पुत्री है। इस पम्परा में संस्कृत को ही सब भाषाओं का मूल उद्गम माना जाता है।

गौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न 'पश्चिमी हिन्दी' और अठ्ठमागधी अपभ्रंश से उत्पन्न 'पूर्वी हिन्दी' की तीन भाषाओं में लिखा गया साहित्य हिन्दी भाषा के साहित्य में परिगणित होता है। "पश्चिमी हिन्दी" की बड़ी बोली ब्रजभाषा और बुन्देलखण्डी इन तीन भाषाओं में से बड़ीबोली व ब्रज भाषा साहित्यिक भाषाये हैं। पूर्वी हिन्दी में घबधी बघेसी छत्तीसगढ़ी इन तीन भाषाओं में से घबधी साहित्यिक भाषा है। ब्रजभाषा में सूरदास तथा उनके समकालीन महाकवियों ने कृष्णमन्त्र की बड़ी सुन्दर रचनाये की हैं। घबधी में जायसी व तुलसीदास ने कमल 'पद्मावत' और 'रामचरितमानस' जैसे अमर महाकाव्यों की रचना की है। बड़ीबोली आधुनिक युग की साहित्यिक भाषा है। इसमें आनन्द कृष्ण माधव में साहित्य लिखा जा रहा है। इसी भाषा को राष्ट्रभाषा होने का मोरच प्राप्त है।

उपयुक्त विकास के अनुसार हिन्दी भाषा का उत्पत्तिकाल १००० ई० माना गया है। इसके बाद ही इसमें साहित्य की रचना प्रारम्भ हुई। विद्वानों ने १००० ई० से अब तक के रचित साहित्य को चार कालों में विभक्त किया है—

- (१) आदिकाल—संवत् १००० से १४०० तक
- (२) भक्तिकाल—संवत् १४०० से १७०० तक
- (३) रीतिकाल—संवत् १७०० से १८०० तक
- (४) आधुनिक काल—संवत् १८०० से आज तक

आविकास

प्रायः देखा गया है कि प्रत्येक भाषा की प्रारम्भिक रचनायें पद्य बद्ध होती हैं। हिन्दी की प्रारम्भिक रचनायें पद्यबद्ध हैं। आधुनिक युग में पद्य पद्य का विकास और विस्तार हुआ। अभी पद्य और पद्य दोनों में रचनायें होने लगीं। हिन्दी का 'आविकास' वृक्ष पद्यमय है। इस युग में भारत में बड़ी व्याप्तिय छाई हुई थी। महमूद गजनवी तथा साहू बुद्धीन श्री के आक्रमण इसी युग में हुए। उनके बाद इस्लाम दरबार सन्निवर्षों ने भारत की समृद्धि से घाइए हो निरन्तर रूप से वहाँ के साठक बनने की आकांक्षा से तथा वर्म प्रचार करने के लिए लगातार आक्रमण किये। राजपूत सन्निवर्षों ने इन विदेशी आक्रमणकारियों से बेस की रक्षा के निवे बुद्ध करते रहते थे किन्तु आपसी पूट और समुचित धार्मिक के समाज में वे इन आक्रान्तियों पर विजय प्राप्त न कर सके। भारत पर लग्न हो गया।

इस समय देश की सामाजिक स्थिति भी बड़ी शर्मनाक थी। देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था। ऐसी राजा आपसी क्रोध में एक दूसरे से युद्ध करते रहते थे। स्वयम्बरों में अपनी धार्मिक का प्रदर्शन एक दूसरे की घटना बन गई थी। वीरों का नाम औरता का शोभा प्रदर्शनमान रह गया था। जहाँ वहाँ किसी सुन्दर कन्या का पता मिलता वहीं वे उसे प्राप्त करने के लिए युद्ध देह देते थे। इस प्रकार हिन्दी भाषा का वह आविकस मुद्र और भूगार का युग था। ऐसे युग में वीर और भूगार रस की रचनायें ही हो सकती थीं। युद्ध की गूज के साथ राजाओं के आधिपत्य विभाग भी वीर-रस से पूर्ण धीवरकी रचनायें करत थे। समाजगत रस युग में वीरगाथाओं और वीर रस प्रधान काव्यों का आविषय हो गया। इसीलिए इस काल को 'वीर गाथा काल' कहा जाता है।

रस युग के सन्निवर्ष कवि चारण और भाट य जो राजाओं के आधिपत्य में रहते थे। वे वीर रसयुग्म में धातुओं के विरह वस्तुतः एवं

उत्साह देने के लिये भोज भरी कविताओं ने अपने आपमयात्मों का योगदान किया है ।

हिन्दी के आदिकाल के प्रसिद्ध कवि जन्मवरदाई हैं जिन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की है । वे पृथ्वीराज चौहान के सामन्त व सलाह थे । युद्ध में पृथ्वीराज के साथ सक्रिय भाग लेते थे । 'पृथ्वीराज रासो' में इन्होंने युद्ध का बड़ा मजीब और भावस्वी वर्णन किया है । इस काव्य में राजपूत वीरों के विविध युद्धों का ऐतिहासिक वर्णन है किन्तु जन्मवरदाई ने जिन युद्धों और घटनाओं का वर्णन इस काव्य में किया है वे इतिहास की विधि के अनुसार ठीक नहीं उतरतीं । इस ग्रन्थ की भाषा भी कई प्रकार की है अथवा इतिहासकार इस ग्रन्थ को आत्मी मानते हैं । इस ग्रन्थ की भाषा राजस्थान की हिंगल भाषा है जो अपभ्रंस के बाद विकसित हो रही थी ।

'पृथ्वीराज रासो' के प्रतिरिक्त इस युग की अन्य प्रधान रचनाएँ 'बीसलदेव रासो' 'जुमान रासो' 'जयचम्प प्रकाश' 'जयमयक-जय-चक्रिका' आदि हैं । सभी ग्रन्थ वीर रस से परिपूर्ण हैं । बीसलदेव रासो की रचना मरपति नासू ने की है और 'जुमान रासो' के कवि अनपति विजय हैं । जबकि कवि रचित 'आस्थासंह' भी प्रसिद्ध वीर रचना है ।

वीरयात्रा काल या आदिकाल की भाषा में अपभ्रंस हिंगल मैथिली और कहीं-कहीं काड़ीभासी का प्रयोग किया गया है । इस काल में लड़ीबोपी के वर्णन समीर लुमरो की पहलियों और मुकुरियों में होते हैं । बिद्यापति ने मैथिल भाषा में रचना की है । यह भाषा का विकास काल या अपभ्रंस से विकसित होकर हिन्दी नये रूप में परिवर्तित हो रही थी । अतः इस युग के सामन्त वर्णों में कई प्रकार की विभिन्न भाषा के वर्णन होते हैं ।

इस काल में दूहा पाबड़ी कवित्त आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

भारि काम का साहित्य सामग्री साहित्य है जिसमें गल्फामीन जन जीवन व समाज का कोई बिन्दु नहीं है। कविधरा अपन आययशाताघा को प्रसन्न करने के लिए उम्मी की प्रशान्तियों गाना अपना कर्तव्य समझते थे और जनता की ओर उम्मीने ध्यान नहीं दिया। इसी युग के कवि विद्यापति व जो रचनायें की वे गुरुवार रस से परिपूर्ण हैं उनमें भी जन बिन्दु प्राप्त नहीं मिलते। इस युग का माया बिकास की दृष्टि से अधिक महत्व है।

भक्तिमत्ता सं० १४०० से १७००

दृष्टीराज की पराजय के बाद धीरे-धीरे उत्तरी भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य हुआ गया। राज्य विस्तार के साथ-साथ हमने धर्म प्रचार का कार्य भी प्रारंभ कर दिया। ऐसी परिस्थिति में ब्रह्मशास्त्र हिन्दू जनता पर भारी घोर से निराशा धीरे-धीरे के बादल छा गये। उनकी पुकार सुनने वाला दीनबन्धु मयबान के सिवाय कोई न रहा। राजपूत क्षत्रियों की शक्ति क्षीण हो गई। उनकी बीज भावना परतबता में तिरोहित हो गई। कवियों के राज्यधर्म उजड़ गये। जिस धर्म होने के कारण हिन्दू मुसलमानों का आपसी वैमनस्य बढ़ने लगा। हिन्दुओं को मृत्यु प्रथम धर्म परिवर्तन के सिवाय कोई सीतरा माय नहीं दिखाई देता था। ऐसी दुःख परिस्थिति से गुजरकर जाने के निम्न मयबान का आग्रह ही एक मात्र उपाय था। जनता घटने हुए के समस्त दुःखों की पुकार मयबान के दरबार में की जाने लगी। युग की परिस्थितियों के अनुकूल ही साहित्य रचना होने लगी। इन समय की रस की रचनायें न हाकर भक्तिभाव की रचनायें होने लगीं। साहित्य में भक्तिभाव की प्रधानता के कारण इस युग को 'भक्तिमत्ता' कहा गया है।

भक्तिभाव की रचनाओं को लगभग धीरे-धीरे निर्गुण भक्ति के आधार पर दो भागों में विभक्त किया गया। पुन मगुण भक्ति में रामोपासक कवि तथा 'हृष्ट्याशमन' कवियों की रचना के आधार पर इनको 'रामभक्ति' माना तथा 'हृष्ट्यभक्ति' माना के दो भेद बिन्दु मय। इसी प्रकार

निगुण भक्ति में ज्ञान और प्रेम मयी भक्ति के आधार पर 'ज्ञानाययी और 'प्रेमाययी' वो भक्ति प्रकारों प्रकाशित हुई। इस भाँति भक्तिकाल की रचनाओं चार भागों में विभक्त हो गई।

निगुण भक्ति	सगुण भक्ति
(१) ज्ञानाययी शाखा	(१) कृष्णभक्ति शाखा
(२) प्रेमाययी शाखा	(२) रामभक्ति शाखा

उपर्युक्त चार प्रकार की भक्ति रचनाओं में कवियों ने देव काल के अनुकूल जनता को भक्ति की ओर प्रेरित किया। भक्ति युग के सर्वप्रथम कवि कबीर हैं।

ज्ञानाययी शाखा — भक्ति की ज्ञानाययी शाखा के प्रवर्तक सन्त कबीर हैं। कबीर ने हिन्दू-मुसलमानों में प्रेमभाव उत्पन्न करने के लिये दोनों धर्मों के बाह्य पाखंडों की तीव्र धापीचना करके सगवान् के निरु-कार रूप की उपासना पर बल दिया। उन्होंने धर्म के उन सब बाह्य रूपों का लक्षण किया जो दोनों धर्मावलम्बियों के बीच मनमुटाव उत्पन्न करते थे। जैसे हिन्दुओं की जातिपाति व्यवस्था बाह्यणों के पोषी पन्ने बन साका तिनके छाये तीर्थयात्रा यात्रा धारि और मुसलमानों की नमाज कुरान हिसा, रोका धारि। कबीर ने बताया कि राम और रहीम में कोई भेद नहीं है। ये तो ईश्वर के बाह्य नाम हैं। ईश्वर तत्त्व एक ही है। वह सब में समान भाव से समाया हुआ है। सब उसी की सन्तान हैं। कबीर के पदों, वाक्यों साक्षी धारि ये इन्हीं भावों की अभिव्यञ्जना है। कबीर की इस भक्ति पद्धति की ओर जनता आकर्षित हुई और हिन्दू मुसलमानों के बीच काफ़ी हद तक एकता का भाव उत्पन्न हुआ।

ज्ञानाययी शाखा के अन्य सन्त कवियों में राहु, रीरास नामदेव नामक सुन्दरदास भसुकदास धारि के नाम प्रसिद्ध हैं। ये सन्त कवि अधिकतर नीची जाति में थे वे किन्तु उत्तम भक्तिभाव तथा साहित्य रचना के कारण सर्वसाधारण जनता में पूज्य बन गये थे।

निर्मुलमल्लि की ज्ञानाभयी भाषा की प्रमुख विशेषतामें निम्न प्रकार हैं -

- (१) इस भाषा के कवि ज्ञान के आचार पर ईश्वर के सर्वव्यापी रूप की भक्ति व उपासना कर बस देते हैं। वे बाह्य पासों के बन्दूक बन हैं।
- (२) इस भाषा के सब कवियों में गुरु की महत्ता का प्रतिपादन किया है क्योंकि गुरु ही मनुष्य की परमात्मा तक पहुँचन का मार्ग दिखाता है।
- (३) इन कवियों ने माया-मोह की निन्दा व संसार की प्रसारता का बड़े प्रभावपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है।

इन सप्त कवियों की भाषा में पंजाबी, राजस्थानी वगैरह बोलती, धरणी उर्दू पढ़ती सभी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसका कारण यह है कि ये कवि प्रमाण करते रहते थे और जिस देश में जाते थे वही की भाषा के शब्द इनकी रचनाओं में आ जाते थे। निश्चित भाषा के कारण इनकी भाषा 'समुच्चड़ी' या 'विचड़ी भाषा' कहलाती है। कबीर की भाषा में विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

ज्ञानाभयी सप्त कवियों ने अपनी रचना 'सांगी और 'सबन्धों' में की है। 'सांगी' बीड़े श्रवण में है और 'सबन्ध' पदों में।

सप्त कवियों में अविज्ञान ऐसे थे जिन्होंने 'मल्लि बागव' को हाथ भी नहीं लगाया था किन्तु सच्ची अनुभूति के कारण इनके पदों में स्वाभाविक सौन्दर्य है। धर्मवाद, अनुशासन से रहित होने पर भी उनमें माधुर्य और प्रभावशाली है। कबीर के निम्न पर चित्रने भाव पूर्ण हैं -

मासी घाबत बेगहर करिदन बरी पुरार ।

पूनी पूनी जुन नई नान्ह हमारी बार ॥

समुद्रोपासक कवियों ने सुभी पीड़ित और गिरास जनता को ईश्वर के उस रूप के दर्शन कराये जो मुक्त-मुक्त का साथी है, जो आपत्तिकाल में रक्षक है जो मर्त्यों की पुकार पर दीड़ा जमा धाता है जो बहुत सुन्दर और दक्षिणाभी है । इस लोक की समस्त बाधाओं उस भवभानु के स्मरण मात्र से नष्ट हो जाती हैं ।

रामभक्ति व कृष्णभक्ति काव्य के मूल आधार आत्मीय रामायण और श्रीमद्भगवद्गीता हैं ।

कृष्णभक्ति शाखा में सबसे अधिक प्रसिद्ध कवि सूरदास हैं । वे श्री बल्लभभार्य के शिष्य थे और उन्हीं के कहने पर इन्होंने कृष्ण की बात छवि व शृंगार का वर्णन किया है । वे श्रीनाथ जी के मंदिर में गिर्य एक गया पद बनाकर कृष्ण की सीता का कीर्तन करते थे । इस भाँति कृष्ण सीता पामन में इन्होंने सबा सास पदों की रचना की । इन सबा सास पदों में से आठकल पाँच हजार के लगभग पद प्राप्त हैं । इन पदों का संग्रह 'सूरसागर' में किया गया है ।

सूर के वात्सल्य और शृंगार वर्णन की तुलना में आज तक अन्य कवि नहीं दिखाई देता । कृष्ण के वात्सल्य के बड़े मधुर, मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक चित्र इनके पदों में अंकित हैं । माता बछोदा का वात्सल्यप्रेम सूर ने जिन शब्दों में अंकित किया है उनसे मातृ-हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावना इस भाँति प्रकाश में आई है कि माता बछोदा कृष्ण की माता ही नहीं जगन्माता हो गई हैं । बछोदा नाम के साथ मातृ हृदय लिपटा सा पाठा है । इसी प्रकार कृष्ण की बात बेटों संसार के प्रत्येक बालक की बेटा व भावों का एक मनोवैज्ञानिक चित्रक विकसित करती हैं । कृष्ण-कहूँया प्रत्येक बच्चे का प्रतिरूप है । सभी बालकों ने सूर के वात्सल्य और शृंगार वर्णन की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए उन्हें सूर (सूर्य) का पद प्रदान किया है, यथा -

मूर मूर गुनसी बसि उडुगन केउबवास ।
 भग्य कवि लघोव सम बहै तहै करत प्रकास ॥
 तब तब मूरा कही गुलसी कही धनूटी ।
 बची लुभी कबिरा कही पीर कही सब भूटी ॥
 किन्हीं मूर को सर सग्यो किन्हीं मूर की पीर ।
 किन्हीं मूर को पद सग्यो तन मम भुनत छरीर ॥

सत्य ही मूर के वास्तव्य-बर्णन में 'अम्य कवियन की उक्ति मोहि साने भूटी जान भूटी मूरदास की' की उक्ति पूणतया सार्थ है ।

वास्तव्य की भाँति मूर का शृंगार वर्णन (संयोग विभाग) भी उत्कृष्ट कोटि का है । संयोग में कृष्ण की रूप माधुरी मोपिमां स परिचय मूरमी बदन छसनीसा पनबट सीता, कुब बिहार, बपि-माखन कोटी धारि का मनोहायी वर्णन है और कृष्ण के मधुरा वस जाने पर माता बगोरा और मोर-मोपियों का बिरह वर्णन भी अपूर्व है । कृष्ण हाथ भेजे मये निर्गुण मान के लदेस पर मोपी हृदय के भाव वर्णन में मूर ने अपनी प्रतिभा का अद्भुत अमत्कार दिखाया है । ऊँको के प्रति बही गई मोपियों की उक्तियों में बालिदग्गता और भाविकता है ।

वास्तव्य शृंगार के अतिरिक्त मूर ने अनेकान् कृष्ण को सच्चा मानकर बहुत से दिन-रातों की रचना की है । इन रातों में अति भाव व जीव की शीनता का चित्रण है । मूर की अति कृष्ण को सच्चा मानने क कारण 'नयनमाव' की बहनाही है ।

मूर की भाषा बज भाषा है । इन्होंने जयदेव और बिद्यापति की गीत पद्धति पर शीतों की रचना की है । रातों में संगीत को प्रधानता है । भाषा बड़ी सरल आसानी है । अनेकान् रातों का धारणिक प्रयोग होने पर भी भाषा में अटिक्ता नहीं आई ।

कृष्ण अति के छाठ बनि अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध है । इन बरियों के नाम हैं—मूरदास कुम्भनाथ बन्दराग कृष्णदास दीतम्बानी,

धोबिदास चतुर्मुखदास परमानन्ददास । उपर्युक्त छाठों कवियों में से साहित्य में मूल्यास व लब्धदास विशेष प्रसिद्ध हैं ।

भट्टभाष के अतिरिक्त कृष्णभक्ति के अन्य कवियों में रहीम रसखान और मीरा का नाम विशेष उल्लेखनीय है । रहीम और रसखान आदि से मुसलमान थे किन्तु कृष्णभक्ति में उनकी रचनायें बड़ी सरस और भावमय हैं । रसखान तो ब्रज की भक्तियों करीब कुर्बानों पर अपना सर्वस्व स्वीकार करने के लिये उत्तम थे । उनकी निम्न पंक्तियाँ -

मानुस ही तो बही 'रसमान' बसी ब्रजपोकुस बाँध के मारन ।
ओ पनु ही तो कहा बस मरो जरी निर मन्द की बेनु मम्हारन ।

बड़ी प्रसिद्ध हैं । रहीम के दोहों में कहीं-कहीं बड़ी लंबी भावनायें व्यक्त हुई हैं जैसे -

अव्युत चरन तरंगिनी शिख छिर मासि मास
हरि न बनायो सुरसरि कीजौ इदम मान ।

दोहे में पंजा के प्रति आदर मान व्यक्त किया है । नीचे की पंक्तियाँ कृष्णभक्ति की हैं -

तैं 'रहीम' मन आपुनों कीन्हों बाक बकोर
निहि बासर साप्पी रहै कृष्ण बग्न की ओर ।
रहिमन कोई का करै ज्वापी बोर लवार
ओ पठ राखन हार है माखन-बाखन हार ।

मुसलमान होते हुए भी अन्त दोनों कवियों के मान फितने भक्तिपूर्ण और सरस हैं ।

मीरा की कृष्ण भक्ति माधुर्य भाव की है । इन्होंने बरबार छोड़कर कृष्ण को अपना तन मन वन समर्पित कर दिया था । वे कृष्ण को ही अपना प्रति मानती थीं । अतः उनकी बेना चर्चना तथा भक्ति में आत्म विभोर हो जायने समझी थी । कृष्ण के विरह में मीरा ने अपने हृदय के

भाषों को बड़े मार्मिक दृष्टि में व्यक्त किया है। उनका एक-एक पद 'प्रेम की पीर' का समकक्ष सागर है। इन पदों में न कोई बनावट है न कोई समावट। स्वाभाविक होने के कारण ही वे भक्त हृदयों की पाती हैं। मीरा की 'माधुर्य भाव' की मक्ति का धाये धन्य कृष्णभक्त कवियों ने भी अनुसरण किया। मीरा के वह समस्त आरतवर्ष में बड़े प्रेम से गाये जाते हैं।

समूह कृष्णभक्ति साहित्य गेय पदों में लिखा गया है। इस छाया के किसी कवि ने प्रबन्धकाव्य की रचना नहीं की। कृष्णभक्ति में कवियों ने प्रायः कृष्ण के रूप शोभ्य या बाल रूप का ही वर्णन किया है उनकी शक्ति, पौरुष, दानव-वधन आदि मोह-हितकारी रूपों का वर्णन करने में इन कवियों की रुचि नहीं है। श्रुतिविरुद्ध पदों के आधिपत्य से प्रागे आकर ऐतिहासिक में कृष्ण और राधा के नाम पर और परस्पर श्रुतिविरुद्ध रचनाएँ कवियों ने की। राधा और कृष्ण नामात्म्य नायक नायिकाओं के रूप में संकलित किए गये। प्रत्येक दिन रमिक पुरण 'कृष्ण' और प्रत्येक दिनद्वितीया स्त्री 'राधा' नाम से सम्बोधित हुई। कृष्णभक्ति साहित्य का यह रूप कुछ सीमा तक मोह-हितकारी होने की अपेक्षा हानिकार मित्र हुआ किन्तु जहाँ तक मूर तथा अन्य अष्टछाप कवियों की रचनाओं में कृष्ण की बालकृति का वर्णन है वह जनता के मुष्क मतों में रसधारा बहाने में पूर्ण सफल हुई। मूर के विनयवादी जनता के अट्टहार बने गये हैं।

कृष्णभक्त कवियों की भाषा ब्रजभाषा है।

रामभक्ति साहित्य — हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की चौथी भागा रामभक्ति साहित्य है। इस साहित्य के कवियों ने प्रबन्धानु राम के मर्यादा पुरोत्तम रूप का आधार लेकर जनता के समक्ष उनके धर्मों का प्रतिपादन किया। कृष्णभक्ति सत्य भाव की है और रामभक्ति दास्य भाव की। रामभक्त कवियों के राम बनकर राम की उपासना की है। गुमनाम ने

राम सो बड़ी है कौन छोटी कौन मोती ।

राम सो करो है कौन छोटी कौन मोती ।

की मायना से अपने हृदय की समस्त व्याप्ति राम के चरणों में उद्दिप्त हो
है । जबार भगवान् एक न एक दिन कृपा करेंगे ही ।

राम का चरित्र मर्यादावादी है । इसमें मायुर्य और शृंगार रस का
क्षेत्र उतना व्यापक नहीं जितना कृष्ण के चरित्र में कवियों ने ब्रू
निकासा था । यद्यपि इस शास्त्र में विने जुने कवि हैं । रामचरित के
सर्वोच्च कवि मोत्सामी तुलसीदास हैं । इनका चरित्र व्यक्तित्व व काव्य
की उतना महान् वा कि अन्य रामभक्त कवियों की रचनायें प्रसिद्धि
प्राप्त न कर सकीं । 'तुलसीदास' का 'रामचरित मानस' साहित्य का
सिरोमणि है । इसकी तुलना में अभी तक हिन्दी में दूसरा प्रबन्धकाव्य
नहीं लिखा गया । इस ग्रन्थ में तुलसी ने लोक धर्म की बड़ी सुन्दर स्थापना
की है । राम के चरित्र वर्णन में उन्होंने समाज के छोटे बड़े ऊँच-नीच
धर्म-अधर्म प्रहस्ती-सम्पादी सभी वर्गों के सिद्धे प्रभूत सामग्री प्रदान की
है । मुगल काल की निराशासनी राजनीति में भगवान् राम के लोक रक्त
स्वरूप का सूर्य प्रकाशित हुआ जिसमें समस्त अन्धकार विनीत हो गया ।
प्राज्ञा उत्साह, हृदय और ध्यान की निर्भरिणी कूट पड़ी मंगल प्रज्ञा
हुआ ।

तुलसी का 'रामचरित मानस' उत्तरी भारत की जनता का कंठहार
है । इस ग्रन्थ में हिन्दू धर्म के समस्त धारकों का वर्णन है किन्तु वह उप
देष्टात्मक न होकर रसात्मक है । इसमें राम के धील धीमर्त्य और शक्ति का
बड़ा हृदयप्राप्ति स्वरूप धर्मित है । रामायण की एक-एक चीन्हा एक धर्म
ग्रन्थ का स्वरूप है । माता-पिता बुद्धिमानों की आज्ञा पालन सन्तान का
धर्म है तुलसी ने इस धर्म की व्याख्या निम्न प्रकार से की है -

प्रभुचित उचित विचार तबि जे पालहि पितु वीन
ते भाजन भुग सुपदा के बसहि धमर पुर ऐन ।

सहज मुक्त वृक्ष स्वामि सित-जोनी केरे-हित-मानि ।
 सो पछिदाय मधाम जर मबसि होव हित हानि ॥

राजा-प्रजा संबंध पर उन्होंने लिखा है -

जामु राज मिय प्रजा बु-जापी । सो नृप धरति नरक मजिकारी ॥
 रामावण में भार्द-भार्द, पिता-पुत्र माता-पुत्र पति-पत्नी पुर-मिथ्य
 स्वामी-सेवक राजा प्रजा सभी सम्बन्धों का बड़ा धादर्य बिचारत हुआ ।

रामायण की भाषा साहित्यिक धरती है तथा अन्य कोई और
 बीरार्द है । तुलसीदास ने रामचरित मानस के अतिरिक्त अनेक
 ग्रंथों की रचना की है जिनमें धरती कीर जब दोनों भाषाओं का प्रयोग
 किया है । दोनों भाषाओं के साथ नृप की प्रचलित सभी काव्य पद्धतियों
 का भी उन्होंने प्रयोग किया है । बलि क्षेत्र में तुलसी और नूर का
 स्वाम एक समान है । नूर और तुलसी हिन्दी वाक्यांश के प्रभासमान
 पूर्व-वम्ब हैं ।

रामभक्ति शास्त्र के अन्तर्गत हैं नामादास प्राणानन्द बीहान,
 मधदास हुबबदास कैसदास आदि ।

रामभक्ति साहित्य का जनहित की दृष्टि से कृष्णभक्ति साहित्य
 की ओरता अधिक भट्ठा है । इस साहित्य ने जनता व समाज को बलि
 रत के साथ अपने कर्तव्य की ओर भी संबोधित किया । समाज में धर्म व
 नीति की स्थापना हुई ।

रामभक्ति परम्परा में प्राणिक कवि मंजनीमरत पुत्र भी तुलसी
 के समान मयीता व धारण के बसता है ।

रीतिकान्त (१७००-१८००) -

हिन्दी में रीतिज्ञान के 'स्वर्ण कुं' के परवान् रीतिकान्त का
 प्रारंभ हुआ । 'रीति' का अर्थ है 'वाक्य शास्त्र के सिद्धान्त । इस युग में
 कवियों ने वाक्य के सदाएँ ओर उदाहरणों की रचना अधिक की है तथा
 नाम-नामिका वर्णन, नग-नीग वर्णन आदि की भी प्रचलना है । इन

उसमें तक मुगल शासक भारत में अच्छी प्रकार जम गये थे । देश में शान्ति स्थापित हो गई थी । हिन्दू-मुसलमान परस्पर हिल-मिल गये थे । शक्ति भाव की रचनाओं से भेद भावना कुछ सीमा तक दूर हो गई थी ।

शान्ति के समय शासकों में विभासिता का प्रादुर्भाव एक स्वाभाविक वृत्ति है । मुगल शासक सुरा सुन्दरी के प्रेमी थे । उनका जीवन वैभव विभास के सम्पूर्ण साधनों से भरा-पूर था । संगीत कला साहित्य आदि के प्रति उन्हें प्रेम था । अपने शासकों का अनुकरण कर बड़ी राजाओं में भी इन प्रवृत्तियों का विकास हो रहा था । वे अपने मनोरंजन के लिये बड़े बड़े संगीतज्ञों कलाकारों तथा कवियों को अपने दरबारों में आमंत्रित करते थे । ये प्रभावित कलाकार और कवि अपने सामयिकताओं की प्रसन्नता के लिये उनकी शक्ति के अनुकूल रचनाएँ किया करते थे । स्वभावतः वे रचनाएँ भूगारिक और वैभव-विभास के चित्रों से परिपूर्ण हैं । इन रचनाओं में भावक-भाविका के भूगार का उनके मन-सब का विस्तृत वर्णन है । कवियों की सारी शाय्य प्रतिभा इन्हीं विषयों तक सीमित है ।

इस युग में दो प्रकार के कवि हैं । एक वे जो काव्य के लक्षण निखकर उदाहरण के लिये कवित्त सर्वियों की रचना करते थे दूसरे वे जो राजाओं के सामय में रहकर उनके मनोरंजनार्थ भूगारिक रचना करते थे । वैभव-विभासी शासकों के माध्य रहने वाले इन कवियों ने सामान्य गरीब जनता की ओर ध्यान न देकर मनमाने तौर पर कविता के साथ खिलवाड़ किया है । इन कविताओं में या तो भुलभुली गिनतों मझनों, बहानाभूषणों सुन्दरी नायिकाओं वृत्तियों आदि का वर्णन है या किसी नायिका के हाव भावों का अतिरंजित वर्णन है । छरीर के एक-एक भामुपण और एक एक रंग की शोभा वर्णन में हजारों पद्य सिले गये हैं । भूगार की अविज्ञता के कारण ही बहुत से घालोचकों ने 'पठिनाल' को 'भूगारिक काम' कहा है ।

जैसा कि पीछे बताया था चुना है कि कृष्णभक्ति के समर्पादित भूगार कणन से आगे आकर 'राधा कृष्ण' को सामान्य नायक नायिका मान बना दिया। रीतिकाल के कवियों ने 'राधा कृष्ण' सुमिरन को बहाना लेकर कृष्ण राधा के नाम पर और असीम रचनाओं की सृष्टि की है। पूरे २०० वर्ष तक साहित्य में भूगारिक रचनाओं की भूम रही। संक्यों कवियों ने एक पिछी परम्परा के आधार पर अपनी कविता शक्ति का प्रदर्शन किया है। सम्पूर्ण रचनाएँ एक ही ढाँचे में डली हुई हैं। उनमें अपना निजी व्यक्तित्व नहीं है।

किन्तु इन सबका तात्पर्य यह नहीं कि 'रीतिकाल' में उत्कृष्ट कवि के कवियों या भावपूर्ण रचनाओं का अभाव है। इस युग के कुछ कवियों के नाम साहित्य के इतिहास में सबीर अमर रहेंगे। देव मतिराम बिहारी जगानंद ठाकुर, नृपल पदमाकर, बीनदयासमिरि गिरधरदास आदि इस युग के प्रसिद्ध कवि हैं।

अपर्युक्त कवियों में कविगुरु बिहारीदास का नाम सर्वोपरि है। बिहारी के नाम से न केवल हिन्दी पाठक अपितु अन्य बहुत से लोग परिचित हैं। इनकी बिहारी सतसई रीतिकाल का सर्वोत्तम ग्रन्थ ग्रंथ है। इस एक ग्रन्थ से ही बिहारी की कीर्ति अमर हो गई है। बिहारी को एक एक बोहे पर कमपुर नरेश जगसिंह से एक-एक अछर्छी मिलती थी। इस ग्रन्थ में रीतिकाल की सभी विशेषताओं का समावेश है। बोहे जैसे छोटे छंद में भूगार रस के भाव विभाव अनुभाव संवारी भावि भावों का पूर्ण परिष्कार है। अलंकार व शब्द शक्ति के उत्तम उदाहरण इन बोहों में विद्यमान हैं। अमंगति असंवार या बिरोधानाम बिहारी का प्रिय अलंकार था। इसकी व्यवसा नहीं-नहीं बहुत ही सुन्दर हुई। यथा -

या अनुपगनी चित्तनी यनि समुसे माँहि नोय ।

ज्यों ज्यों बुझे दर्याय रंग ज्यों त्यों उज्ज्वल होय ।

(बिरोधानाम)

हम उरमग्न द्रष्टु बुद्धिगम्य पुरतः चतुर चित्त प्रीति ।
परति गतिं पुरजग्न हिमे बई नई यह रीति ।

(संसंगति)

संयोग व वियोग गूँघार के बड़े उत्तम भाव कहीं-कहीं उगहूँनि व्यक्त किये हैं । परन्तु वहाँ उग्रा को धपनाया है वहाँ असमाभाविकता या गई है जैसे किसी वियोगिनी नायिका की दुर्बलता का यह विषय -

इत पावसि बलि जात पत बनी छ सावक हाव ।
कड़ी हिंदोरे से रही मारि उवासन साव ।

धमबा रूप का यह प्रतिध्वनितमूर्त्युर्ग बर्णन -

पना ही तिथि पाइये बा बर के बहु पास ।
मित प्रति पूम्होई रही मानन भोज उपास ।

बोहे छत्र की छोटी सी परिधि में बिहारी ने बिन भावों को व्यक्त किया है अन्व कवि उसी भाव को छः या साठ पंक्ति के छम्पब तथा कवित्त सर्वथा बीसे बड़े छंद में भी स्पष्ट नहीं कर पाये हैं । इसीलिए 'बिहारी' के बोहे 'आवर में सागर' भरने वाले कड़े जाते हैं । किसी ने कहा है -

सतसीया छि बोहरे ज्यों मानक के तीर ।
देवन में छोटे लगे मान करे दम्भीर ।

सतसई का अर्थ है सात ही ज्यों का काम्य । 'बिहारी सतसई' में सात ही बोहे हैं । इनका अनुकरण कर इस रूप में अन्व सतसई भी लिखी गई ।

रीतिकान्त की गूँघारिक धारा में भीर रस की रचना करने वाले भूपण कवि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

'भूपण' पहले लिखाबी और फिर महाराज छक्काम के धामित कवि से किन्तु उगहूँनि धपनी सेकनी का उपयोग राजाओं के वैभव बिभण

के लिए न करके बेशर्त और जाति की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध करने वाले
वीर सिन्हाजी और छत्रसाल की शूरवीरता के वर्णन में किया है। इनकी
कविता का मुख्य विषय वीरो का कीर्तिमान और युद्ध वर्णन है। इन्होंने
अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दू राष्ट्र व हिन्दू संस्कृति का पौरव बढ़ाया। भूपाल
ने अपने युव की परंपरा के अनुकूल एक अलंकार धम्म जिसका नाम है
'सिन्हाबाबनी' की रचना की है किन्तु उसमें भी वीर सिन्हाजी की वीरता
का वर्णन है। उनकी कविता अब माया में है जिसका एक उदाहरण
प्रस्तुत है -

अस्ति अकक्षा चीकि चीकि उठे बार बार,
बिल्मी बहसति चित्त चाहि करपति है।
बिलगि बदन बिलसत बिबिपुर-पति
किरत किरंपनि की मारी करकति है।
बर-बर कोपत कुनुबसाहि पोलकुभा,
हुरि हवत भूष-भोर भरकति है।
उमा सिवराज के नमारन की बाफ मुनि
केते बारसाहण की छाती भरकति है।

छंद में 'रीतिकान' के मुख्य विषय प्रेम और शृंगार हैं। मान
सूचक यदि नहि इस काम के अनन्त स्वप्न है। इन युव की कविता
वैभव की प्रदर्शनी भाषा है। प्रायः सब कवि बरबाटी व झिंझोने
कीविधा प्राप्त की मानता में अपने आभयशक्तियों का अतिप्रयोज्यपूर्ण
प्रदर्शन किया है सामान्य जनता के लिए इन कवियों में कोई
माधर्म उपरिष्ठ नहीं किया। रीतिकान की कविता में समापन की
कमावाजी है भावों के प्रति कवियों का अनुपय नहीं है। कविता में
बनावटीपन है।

इस काम की भाषा अशुभाभा है और छंद, कविता सर्वथा दोहा
धारि। प्रबन्धराज्य की रचना इस युग में प्रायः नहीं हुई।

धार्मिक कास (सं० १६०० ई० से अब तक).—

हिन्दी का धार्मिक कास प्रारम्भ होने से पूर्व देश की राजनैतिक स्थिति में महान् परिवर्तन हुए । मुगल-शासकों की विलासिता और घापसी ईर्ष्या-द्वेष ने राज्य की जड़ें जोखनी कर दीं । सारे भारत में कूट का कास बिछ गया । एक दूसरे के प्रति हिनयाने में मगकर पड़मग होने लगे । घापसी भड़ार्ह-अगोत्रे से साम उठकर मुद्गर पश्चिम से आई हुई ब्रिटिश जाति ने भारत पर अधिकार कर लिया । मुगल साम्राज्य समाप्त हुआ और अब की साम्राज्य स्थापित हुआ । अंग्रेज शासकों के प्रायमन से देश की राजनैतिक सामाजिक धार्मिक सभी स्थितियों में अमृतपूर्व परिवर्तन हुआ । कुछ विचारों में देश ने बड़ी प्रगति की और कुछ धर्मों में जैसे भारतीय रहन-सहन ज्ञान-दान, धीति-रिवाज आदि में विदेशों का अनुकरण हुआ । कुछ वैयक्तिक सुधारकों ने भारत की आन्दोलन परिस्थिति का अध्ययन कर युग के अनुकूल सुधार आन्दोलन चालू किये । राजा राममोहनराय का 'बङ्ग समाज' स्वामी दयानन्द का 'धर्म समाज' को बड़ी प्रबल सुधारवादी संस्थाओं ने जन्म दिया । १८८१ में कांग्रेस की स्थापना हुई ।

अंग्रेज शासकों ने अपने देश को समृद्ध करने के लिए भारतीय उद्योग-अर्थों को भीषट कर दिया । यहाँ की कारीगरी धीरे-धीरे समाप्त हो गई । विदेशी वस्तुएं बाजारों पर जबरदस्ती भारत घाने लगीं और भारत का धन व सोना जबरदस्ती विदेश जाने लगा । देश की धार्मिक स्थिति बिपड़ गई । गरीबी छा गई । किन्तु दूसरी ओर अंग्रेजों ने धार्मिक सुविधा व सुखवस्था के लिए रेल तार, डाक प्रेस बहुत बिजली आदि का प्रबन्ध किया । अथह-अथह स्कूल कालेज खुल गये । अंग्रेजी भाषा का प्रचार बढ़ा । शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो गया । देश में नवजागरण हुआ । विदेशी सभ्यता और शिक्षा के प्रभाव से देशवासियों में नव चेतना आई । उनमें वैयक्तिक व स्वतन्त्रता का भाव जागृत हुआ ।

भारतेन्दु युग -

ऐसी परिस्थिति में देशी राजाओं के आश्रित कवियों के आचार उबड़ नबे । सामंती युग बीच गया 'पैठिकासीम' श्रृंखला के कविता की मुग्धे बालों की संख्या धीरे-धीरे समाप्त होने लगी । देश की परिवर्तित अवस्था में ऐसे साहित्य की आवश्यकता अनुभव होने लगी जो जनता में ज्ञान विज्ञान का संचार कर सके जो देश की समस्या का ज्ञान जनता को करा सके । आवश्यकता के अनुकूल इस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे साहित्यकार का जन्म हुआ । उन्होंने अपने युग की परिस्थितियों का तथा साहित्य परम्पराओं का गहन अध्ययन किया और युग के अनुकूल काम्य की रचना प्रारम्भ की । मनीष युग में पड़ीबोसी गद्य का विकास तो हुआ किन्तु कविता की माया बजबापा ही थी । भारतेन्दु ने बजबापा में देश की आर्थिक सामाजिक तथा नैतिक स्थिति का चित्रण करके देशवासियों का ध्यान अपने देश की दुर्दशा की ओर आकर्षित किया । यथा -

आबहु सब मिनि रोबहु भारत माई ।

हाहा ! भारत दुर्दशा देखि न आई ।

अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा करते हुए भी भारत की आर्थिक दुर्दशा का चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया -

अंगरेजी राज मुल साज सब सारी ।

वै बन विदेश बन आठ दई घति क्यारी ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की युगास्तम्भायी प्रतिभा ने साहित्य में जनजीवन का भीता जापता चित्र प्रस्तुत हुआ । साहित्य का राजदरबारों की भीमिष्ठ परिधि से हटकर जनता के निवास भुने प्रांगण में प्रवेश हुआ । भारतेन्दु ने स्वयं देशभक्ति की रचनाओं की तथा अपने सहयोगी लेखकों को इस बुद्ध्य कार्य में निरुत्ते प्रेरित किया । वं० प्रतापनाथयण मिश्र यमिहारत व्यास शास्त्रकृष्ण भट्ट चौधरी बट्टीनारायण 'प्रेमपत्र' आदि कवियों ने नाटकों और कविताओं द्वारा देश को जमाने का प्रयत्न किया ।

द्विवेदी जी ने अपने मनोमुक्त साहित्य की रचना के लिए युग के प्रतिभा सम्पन्न कवियों और लेखकों को प्रोत्साहित किया। उनकी उत्प्रेरणा पाकर कवियों ने युग की आवश्यकता के अनुरूप वैद्यप्रेम स्वरेस मति, भाव का प्रतीत बीमन स्त्री शिक्षा सहाचार, शिक्षा प्रचार, बीरों की प्रशस्ति राजनैतिक चेतना आदि विषयों पर विस्तृत काव्य रचना की। द्विवेदी जी ने न केवल कवियों को विषय सम्बन्धी सुझाव ही दिये अपितु उन्होंने माया की सुव्यवस्था, कविता के लिए राजमाया का परित्याग मृगार रस की रचनाओं की निम्ना आदि के द्वारा साहित्य का नवीन मार्ग प्रशस्त किया। इन्हीं कारणों से इस युग को 'द्विवेदी युग' कहा जाता है।

द्विवेदी युग में श्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय छ० भोपालशरणसिंह रामनरेश त्रिपाठी यवाप्रसाद मुखर्जी 'सनेही', नाथूराम संकर जैसे उच्चकोटि के कवियों ने काव्य रचना करके साहित्य की श्री वृद्धि की है। कवियों के अतिरिक्त इस युग में व० रामचन्द्र शुक्ल, बा० राम मुखर दास मिश्रबन्धु, बा० मुनाबराय जैसे आलोचक व गद्य लेखक भी हुए। अत्यन्त प्रभाव के अविर्भाव नाटकों की रचना इसी काल में हुई।

श्री मैथिलीशरण गुप्त और व० अयोध्यासिंह उपाध्याय द्विवेदी युग की दो महान् विभूतियाँ हैं। 'हरिऔधजी' ने जनक परिचय करके खड़ी बोली में 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य की रचना की। खड़ीबोली में राजमाया जैसी मधुरता नहीं थी अतः प्रारम्भ में कुछ लोग खड़ीबोली में कविता करने के अस्मत्त विध्य थे। न तो खड़ीबोली के अपने छंद ही थे न माया में पर्याप्त अभिव्यक्ति का शक्ति थी अतः इस युग में खड़ीबोली में काव्य रचना करना आसान काम न था किन्तु अयोध्यासिंह उपाध्याय ने संस्कृत छंदों को लेकर 'राधाकृष्ण' के निरन्तरचित काव्य विषय पर खड़ीबोली में रचना करके एक अद्भुत अन्ति का परिचय दिया। 'प्रिय प्रवास' की माया गई है, हिन्दी में संस्कृत छंदों का प्रयोग गया है। कृष्ण की मानव

रूप में तथा राधा को समावेशिका के रूप में प्रस्तुत करना गया है। कृष्ण के समस्त धार्मिक कार्यों की बुद्धिसंगत व्याख्या नहीं है और प्रकृति का आत्ममग्न रूप में पुनः प्रयोग तथा 'नववा मक्ति' को देवमक्ति में परिवर्तित करना नहीं है। इस भाँति 'प्रियप्रवास' द्वितीय युग का एक सर्वथा मौलिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ को देखकर साहित्योत्पी में धड़ाधड़ रचनाएँ होने लगीं। पं० रामचरित उपाध्याय ने 'रामचरित चिन्तामणि' प्रबन्धकाव्य की रचना की और मैथिलीकरण गुप्त ने 'साकेत' जैसा सुन्दर प्रबन्धकाव्य लिखा।

हिन्दी साहित्य में 'साकेत' की रचना अपने प्रकार का नवीन प्रयोग है। इसकी कथावस्तु रामचरित ही है जिस पर तुलसीदास का योरम वाली महाकाव्य 'रामचरित मानस' लिखा गया है। किन्तु 'साकेत' की कथा में भाव और शैली दोनों ही इष्टियों से बहुत भिन्नता है। साकेत के राम आदर्श पुरुष राम हैं, भगवान् नहीं। सीता आदर्श पत्नी होने के साथ साथ परिभ्रमशील स्वावतन्त्रिणी नारी है। जंगल में रहकर वह मृत जानकी है, भोली किरात भोज बालाओं से परिचय बढ़ाती है। 'साकेत' की सबसे महत्वपूर्ण घटना है सङ्ग्रह की पत्नी उर्मिला की विरह वैदना का विस्तृत वर्णन। उर्मिला ने सीता से भी अधिक त्याग किया। वह चौदह वर्ष तक सङ्ग्रह की स्मृति में धाम्नी बहाली रही किन्तु किसी वधि ने उर्मिला के लिए एक को पति भी नहीं लिखा। आधुनिक युग में नारी का सम्मान बढ़ा उसे हीन-हीन अवस्था में समझकर राष्ट्र की उपायक शक्ति माना जाने लगा। सब सभी उपेक्षित नारियों का व्यक्तित्व काव्य में उभरा। बुद्ध की पत्नी यशोधरा मम की पत्नी दमयन्ती मूरजहाँ रामायणी आदि नारियों पर काव्य रचनाएँ हुई। मैथिलीकरण गुप्त ने 'साकेत' में उर्मिला और वैदेयी के भावों को नये रूप में चित्रित किया है। वैदेयी के मानृभाव की गुप्तजी ने सराहना की है। वह स्वयं परचात्ताप की धमि में जलकर प्रियमयी माता बन गई है और राम से भर मोटने की पाषणा करती है।

‘साकेत’ में युग की समस्याओं का भी चित्रण है। इस ग्रन्थ में पुरानी परिपाटी के काव्य लक्षणों का पूरी तरह पातन न करके कवि ने नई शैलियों को अपनाया है। साकेत का ‘महम तर्क’ सम्पूर्ण काव्य का प्राण है।

लड़ीबोली में काव्य रचना द्विवेदी कुछ की प्रमुख विशेषता है। भाषा को परिमात्रित एवं सुव्यवस्थित करने का श्रेय द्विवेदी जी को है। ‘सरस्वती’ पत्रिका ने सम्पादक रूप में उन्होंने हिन्दी साहित्य की बड़ी मारी सेवा की।

द्विवेदी युग के कुछ उच्च कोटि के कवियों की रचनाओं का साहित्य में बड़ा ऊँचा स्थान है। स्वामनाथराय पाण्डे की बीररसपूर्ण रचना ‘हस्तीनाटी’ सुभद्राकुमारी चौहान की ‘झंसी की रानी’ गुदमर्त्यसिंह की ‘नूरजहाँ’ रामनरेश त्रिपाठी के ‘स्वप्न’ ‘मिसन’ ‘पथिक’ ठाकुर गोपासकरलालसिंह की ‘मानवी’ शिवारामनगरल पुस्त के ‘भार्य’ ‘विपार’ ‘पाथक’ और श्री सोहनलाल द्विवेदी का ‘सेवाग्राम’ आदि काव्य सुन्दर और साहित्यिक रचनायें हैं। ‘सेवाग्राम’ में द्विवेदी जी की राष्ट्रीय कवितायें संकलित हैं।

साधारण (१९२५-१९३२) -

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में अंग्रेजी शिक्षा संस्कृति और विचारों का जनता पर पूर्ण प्रभाव पड़ने लगा। भारत की पुरानी परम्परायें धीरे-धीरे टूटने लगीं या उनके प्रति नये लोगों में प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई। सामाजिक राजनैतिक आर्थिक सभी क्षेत्रों में देश का दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया। फलस्वरूप साहित्य में भी भाव और भाषा के क्षेत्र में नवीनता का समावेश हुआ। द्विवेदी युग के कवि नैतिकता समाजसुधार, राष्ट्रीयता आदि विषयों को लेकर रचनायें करते थे जिनमें साहित्यिकता कम उपदेशात्मक होती थी। यह साहित्य निजी भावों की अभिव्यक्ति न होकर देश का भविष्य और समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल

मिठा गया । यद्यपि इसका अधिकार माय प्रकाशत्मक और इतिवृत्तात्मक है । इसमें सख्खता व मधुरता का अभाव है । मारीसौन्दर्य प्रेम बन्धना विभक्त स्वच्छन्द भाव प्रकाशन आदि विषयी युग में वञ्चित थे रहे । इन्हीं सब बातों के विपरीत नये युग के नये कवियों ने शक्ति ली । छायावादी काव्य की भाषा भाव सैनी व्यवस्था सभी में वारि है । छायावादी काव्य के मुख्य विषय हैं सौन्दर्य और प्रेम । नये कवियों ने अपने हृदय के भावों को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है । आसन्न रूप में भी प्रकृति चलते छायावादी कवियों का प्रिय विषय है । छायावादी कविता में निराशा और दुःख के भाव अधिक व्यक्त किये गये हैं । वे समार की जन्मि लक्ष्मी में पहराकर जलत् में दूर प्रकृति की गोद में वा आकाश के सौन्दर्य में लो जाका चाहते हैं । इस काव्यचार पर रचना साहित्य और अंग्रेजी साहित्य का अधिक प्रभाव होम के कारण भाषा में एक नवीन साजगिरुता अलंकारों का नवीन प्रयोग गीतात्मकता आदि गुण आगये हैं । छन्दवादी प्रकृति का भी इस युग में पुन प्रकाशन हुआ ।

छायावादी चम्प प्रारम्भ में उन रचनाओं को दिया गया जो अस्पष्ट और अस्पष्टाहारिक की और 'जीताजनि' की मरम्भ में मिगरी गई थी । इनकी बहुत आलोचना भी की गई किन्तु धीरे धीरे भाषा को सुन्दरता भाषा-जीमी की नवीनता और भाषा के कारण छायावादी चम्प नवीन काव्यचार के लिए ही प्रयोग दिया जाने लगा । आज उत्तम रचनाया और कुछ अच्छे कोटि के कवियों के कारण छायावादी वर्तमानकाल का 'रखल युग' कहलाता है ।

इन युग के प्रसिद्ध कवि हैं अयकर प्रसाद मुनिशानम्भ पत्र महा देवी बर्मा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' रामभुमार बर्मा हरिकान्तव बरचन भगवतीचरण बर्मा, रामनाथ मुमन मोहनमान महतो त्रिपाठी आदि । इनमें प्रथम बार कवि मुद्र छायावादी मान जाते हैं ।

प्रसाद की 'कामायनी' प्रबन्धकाव्य और 'माँ' मुद्र काव्य साहित्य की विभूति है । कामायनी में कवि ने आदि मानव मनु और

यज्ञ की पौराणिक कथा को लेकर नवीन भावों की सृष्टि की है। इसमें यज्ञ का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। माया और सीमा की दृष्टि से 'कामायनी' अपने युग का उत्तम काव्य है।

सुमित्रात्मजन वस्तु की रचनाएं छायावादी प्रवृत्तियों की सर्वोत्तम उदाहरण हैं। सुक-सुक माया-मिथ्या के भावों की इनकी रचनाओं में बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वस्तु की माया में सांख्यिकता मधुरता और ध्वन्यात्मकता है। धार की रचनाओं में ध्यात्म तथा विज्ञान के समन्वय की चेष्टा तथा प्राकृतिक युग के अनुकूल नये समाज की रचना की कामना व्यक्त की गई है। अस्मों के प्राकृतिक सीन्धों ने इनको प्रकृति की घोर विवेक रूप से आकर्षित किया है। यज्ञ काव्य में प्रकृति चित्रण की प्रभावशाली है। युग के महापुरुष जैसे माया अरविन्द धारि के प्रति आपकी पूर्ण श्रद्धा है।

वस्तु ने राष्ट्रीय विषयों पर भी रचनाएँ की हैं। महादेवी वर्मा छायावादी युग की मीरा हैं। आपने जीत ध्यात्मवादी भावनाओं से युक्त हैं। परमात्मा के विरुद्ध में धार की ध्यात्म वेदना का ही आपने सर्वत्र चित्रण किया है। छायावाद की रहस्यवादी प्रवृत्ति के वर्तन प्रभाव सम्पूर्ण जन के अन्तः सर्वव्यापी सन्तान के अन्तः सीमा की असीम के प्रति आकर्षित विरुद्ध विज्ञान धारि का चित्रण सर्वाधिक महादेवी की रचनाओं में ही हुआ है। उनकी 'बीज भी हूँ मैं तुम्हारी पमिनी भी हूँ' तथा 'मैं भीरु भी तुम की बदली' धारि रचनाएँ रहस्य भावना से पूर्ण हैं। 'माया' आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। माया में संगीत और भाव्य है।

'मिथ्या' युग के सबसे अधिक अंतिकापी कवि हैं। उन्होंने निर्मल होकर समाज की कथियों का खडग किया है। आपने धर्म के बन्धन के कविता को मुक्त किया। 'छायावाद' के युग की प्रशस्त और उन्नत बनाने में आपका बड़ा हाथ है। 'मिथ्या' की 'तुलसीदास' तथा 'धर्म की शक्ति पुनः' कविता जो एक रचनाएँ हैं। इनके 'कुरुकुल' 'बेला' धारि

गान्धों में पूंजीपतियों के प्रति तीव्र आक्रोश है। वे छायावादी होने के साथ-साथ युग की आर्थिक विषमताओं से भी पूर्ण सचेत थे। इनकी 'मिगारी' 'तोड़ती पत्थर' 'इसाहाबाद के पथ पर' आदि कविताएँ इन्हीं भावों को व्यक्त करती हैं।

इतनी समस्त रचना करने वाला कवि अपने अन्तिम दिनों में व्याधि से पीड़ित हो कुछ विक्षिप्त सा हो गया था। सन् १२ में मम्बी बीमारी के बाद उनका बेहावसान हो गया।

छायावादी युग के अन्य कवियों में डा० रामकुमार वर्मा का नाम प्रसिद्ध है। महादेवी की भाँति आपने भी रहस्यवादी रचनाएँ की हैं। 'मी बातकृष्ण घर्मा नबीन' व 'ममवतीचरखु वर्मा' का काव्य कुछ मिश्र प्रकार का है। इसमें प्रेम प्रकृति व विद्रोह के भाव अधिक हैं। इन्होंने 'हरी भोजस्वी बाणी' में आत्मिवादी रचनाएँ भी की हैं। श्री रामभारीमिह 'दिनकर' 'नरेन्द्र जर्मा' भी इसी जाति के कवि हैं। किन्तु इनकी रचनाएँ 'छायावादी' प्रवृत्तियों से भौंधी नहीं हैं। इन्होंने स्वतन्त्र सैली में स्वतन्त्र भाव प्रकट किये हैं। हरिद्वाराय बच्चन की 'मधुबाला' 'मधुगाला' आदि काव्य संग्रह जनता में बड़े प्रसिद्ध हैं। इन कविताओं के कारण लोगों ने 'हाला बाद' नाम से एक नया बाद ही प्रचलित कर दिया। 'एकान्त संगीत' 'मिया निमन्त्रण', आदि मुक्तक काव्यों में 'बच्चन' ने अपने मनोभावों को सुन्दर और प्रभावशाली रूप में व्यक्त किया है। इनकी भाषा सरल किन्तु भावमयी है।

संक्षेप में 'छायावादी' काव्यकारों के कवि धारने आपमें मोन हाकर निम्नी भावों को ही काव्य रूप में प्रकट करते रहे। अपने मुख-दुःख के परे उन्हें जगत् की चिन्ता नहीं थी। आशा के तारे, जन्म सागर की लहरें, पृथ्वी के कुमुद ठिठनी वगैरह उन्हें अधिक आकर्षित करते थे अनुपम वन। 'छायावादी' का अधिवासी काव्य वास्तवता की मूर्ति पर धरा है। इसीलिए जीव ही इसका विरोध आरम्भ हुआ और जनता के मुख

पुष्प को बाण्टी को मुक्तित करने वाली 'प्रगतिवादी' बाण्ट का प्रचार हुआ ।

प्रगतिवाद (१८३५-१८४५) —

प्रगति का सामान्य अर्थ है आगे बढ़ना या काव्य जन्म-जीवन को किसी रूप में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है यह प्रगतिशील है । इस अर्थ में प्रत्येक पुष्प की कविता अपने पिछले युग से किसी न किसी रूप में प्रगतिशील होती है । पुरानी परंपराओं को त्यागकर काव्य में अब किसी नये विषयों नये भावों और नई शैली का प्रतिपादन होने लगता है सभी कविता प्रगतिशील हो जाती है । किन्तु हिन्दी की प्रगतिवादी काव्य बाण्ट प्रगति के उपयुक्त सामान्य अर्थ को धारण करती हुई भी एक निश्च प्रकार की प्रगति का सत्य लेकर प्रारम्भ हुई प्रगति इसी को 'प्रगतिवादी' समझा ली गई । 'प्रगतिवादी' न प्रगति का अर्थ है मार्क्स की इन्कारमक नीति के दृष्टि से वर्गों को बेचना वर्ग संघर्ष को सीधे करना सोपनों का पक्ष लेना और अर्थ विहीन समाज की स्थापना करना । प्रगति के इस अर्थ को दृष्टि में रखकर जो रचनाएँ हुई वे 'प्रगतिवादी' कहलाएँ । इसके विपरीत जिन कवियों ने इन सिद्धांतों से प्रभावित होकर भी इन्हीं विषयों तक अपने को सीमित न रखकर सर्व सामान्य रूप से समाज को प्रगति की ओर ले जाने वाली रचनाएँ की वे प्रगतिशील कहलायें । इस प्रकार 'प्रगतिवादी' और प्रगतिशील कवियों के दो निश्च अर्थ माने जाते हैं । भारत मूलक अष्टवाल केदारनाथ अष्टवाल रामविभास सभी नरेन्द्र धर्मा विद्यमयलसिंह सुमन भारती प्रतापसिंह अचल जमवीर भारती राधेश राधक आदि कवियों ने प्रारम्भ में प्रगतिवादी रचनाएँ की और मुनिना मन्दन पन्त निराला बिनकर, बच्चन बालकृष्ण जमी 'मनीम' आदि ने प्रगतिशील । किन्तु धीरे-धीरे यह अन्तर मिटता गया । आज सभी कवि प्रगतिशील हैं, प्रगतिवादी बाण्ट मुप्त प्राय हो गई है । सन् ४५, ४६ के बाद से ही इसका प्रभाव क्षीण होने लगा था ।

सन् १९२० के पश्चात् हिन्दी में जिस प्रकार सामाजिकी कविताओं की बूम थी जिसमें प्रत्येक गद्यपद्य कवि किसी कल्पित या वास्तविक प्रियतमा के बिछड़ में प्राप्ति कहना चाहें मरना और रखनी लारे, नौका बाँदनी आदि से मन बहुसामा आनन्दमय सम्पत्ति या उसी प्रकार सन् ३५ के बाद हिन्दी में प्रगतिवादी रचनाओं की बूम मची जिनमें प्रत्येक प्रगतिवादी कवि सोपनों के लिये घूला प्रकट करना सोपनों की अन्तिम का एक गाना, साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार करना तथा हँसिया हँसोड़ा और मान रस मान निगान आदि का प्रयोग करना अनिवार्य मानने लगा था। जवाहरलाल के लिये प्रगतिवादी कवियों की कुछ कविताएँ प्रस्तुत हैं -

जहाँ सहस्रहाती रोती पर कागजों में बहते थे
सभी पास की डेरी पर माना भी बात सगाते थे।
आज बुझते ही न जबानी गई कसीस जवानों की
मान रस है बाल मानियों सब मजदूर किसानों की।
मान रस का दुस्मन सभी दुस्मन सब दुस्मनों का
दुस्मन है सब मजदूरों का दुस्मन सभी किसानों का।

- जेम्स जेम्स

पुर्णों की सड़ी कवियों को कुचलती,
जहर की सहर से लहरती मजलती
अंधेरी निशा में मसलों की जलती
जली जा रही है बड़ी मान निशा।
समाजी विषमता की नीचे मिटाती
परीशों की बुनियाद में जीवन जगाती
प्रमोदों की मोने की संघा जलाती
जली जा रही है बड़ी मान निशा।

- विजयलक्ष्मी मुनि

हान हनीड़ा जिने हुए हैं,
हमें हटा सकता है कीन ?
मोहे की बीमार हमारी —
हमें हिता सकता है कीन ?
काटो काटो काटो करवी,
मारो मारो मारो हथिया ।

— कैदारनाथ प्रज्ज्वाल

समस्त प्रगतिवादी काव्य में इसी प्रकार के विषयों की प्रधानता है । वे कवि काव्य को अपने मठ प्रकार का साधन मान कर बने हैं अतः हमकी भाषा-सैली में आश्रित्य कम सहजता और सरलता अधिक है । इनकी रचनायें वर्णुवाचक हैं जिनमें किसानों मजदूरों तथा अन्य निम्न वर्ग के वर्चस्व बीजक चित्रित हैं । इस प्रकार के विषयों के लिये रत प्रसंगों से सज्जित भाषा की आवश्यकता नहीं होती। प्रगतिवादी विचार पार्य की ओर सम्मुख होते ही जायावादी भाषा सौन्दर्य के अमक थी सुमिश्रणमय पद्य को यह कहने के लिये विवृत होना पडा ।

तुम बहून कर लको जनमन में मेरे विचार,
बाखी भी क्या तुम्हें चाहिये धर्मकार ।

प्रगतिवादी काव्य जनसाधारण का काव्य है । इसके व्यापक प्रकार के लिये भाषा की सरलता प्रतीकों की महीमता उपमा और धर्तकारों में परिवर्तन परम आवश्यक था । इन कवियों ने जनसाधारण में प्रचलित धामीय बच्चों को अपनाते का प्रयत्न किया । जैसे बना बबेना बाबुर, बाइत कुयाइत विसरना बादि । उपमाओं में भी महीमता है । बधा —

- (१) डेले ली बड़ी बड़ी धोलें । —कैदारनाथ
- (२) कोयले के खान ली बजदुरली ली रात । —रामेयराय
- (३) लहू की बुद्धी-से बनते हैं बिजली के
बल्ब मूनी सड़कों पर लाल-लाल । —रायबिमास सर्मा
- (४) दो सालटन से गवन बीन । —मुच्छिबोध

इस काव्यबारा में कमल मीन संज्ञन आदि की उपमायें ब्रुव भा संसृति की प्रतीक मानी गई क्योंकि इस से अनिक बर्ष ज्यादा परिचित हैं। यरीश, मजदूर नहीं। जनवादी काव्य में उन वस्तुओं की उपमा दी जानी चाहिये जो दिन रात धाँसों के सामने रहती हैं या जिनसे हमारा बिर परिचय है। यवना जो हमारी परंपरागत मानसिक भावनाओं को परिवर्तित करने में समर्थ हों।

प्रगतिवादी कविता में सौन्दर्य के मान भी परिवर्तित हो गये। इस दुन की सौन्दर्य भावना जनहित पर आधारित है। पुष्टतन सौन्दर्य के स्थान पर समस्त समुन्दर और मरेख कही जाने वाली वस्तुओं में प्रगतिवादी कवि की दृष्टि में सौन्दर्य लौटा है।

प्रगतिवादी काव्य की मुख्य विशेषता है सामयिक जन-जीवन की अभिव्यक्ति। यद्यपि काव्य युगों में भी समाज की विविध समस्याओं का चित्रण किया गया है किन्तु निम्न मध्य वर्ग के इतने व्यापक दृष्टि का दृष्टि में रतकर काव्य रचना इससे पहले नहीं हुई। सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक आर्थिक सभी विषयों पर नयी व्यंग्यात्मक और चुमटी हुई रचनायें इस आरा के कवियों ने की हैं। यदि ये कवि केवल माकमवाणी विचारों से प्रभावित न होकर शुद्ध जनवादी दृष्टि से काव्य रचना करते तो इसका महत्व साहित्य में सबसे ऊँचा होता क्योंकि भाषा, भाव विषय और गैली की दृष्टि से यह काव्य पाठकों की सर्वाधिक सख्या को आकर्षित करने में समर्थ है। मौखिक और वैज्ञानिक विकास के साथ व्यंग्य और हास्य की प्रकृति में भरपूर इस काव्य की उपयोगिता कम नहीं है। स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के बाद प्रगतिवादी काव्य ने देश की जागृति में तथा व्यंग्य और व्यंग्याचारों के बिरुद्ध आवाज उठाने में अग्रणीय भाग किया है। स्वतंत्र भारत की सरकार के भूँटे आराधनाओं पर लोकगीत की तर्ज में किया हुआ यह व्यंग्य विदवा चुमता हुआ है -

जागे क्या क्या है सुपा हुआ सरकार तुम्हारी छाँवों में ;
 भलका करता है राम राम्य का प्यार तुम्हारी छाँवों में ;
 मोरा लगता है अब काला बाजार तुम्हारी छाँवों में ।

किन्तु प्रगतिवादी कवियों ने समस्त भारतीय परंपराओं को मिटा कर मार्क्सवादी ढंग पर नये समाज की रचना का स्वप्न देखा जो इस भूमि के सिरे समुपप्लुत था । लोगों को इससे प्रचार को पक्क मिनी ने इसे कुले हृदय से नहीं धपना सके । दूसरी बात यह कि काव्य में केवल सामयिक समस्याओं का यथाथ चित्रण ही महत्वपूर्ण नहीं होता उसकी सार्वकालिक सम्पूर्ण जीवन को धपनाकर चलने में होती है । रोटी और भूत का राम मनुष्य को जोड़े समय तक सुन्वर सग सकता है सदा इसका राम कलंकटु प्रतीत होने लगता है ।

एक बंबी सीमा में प्रवाहित होने के कारण जोड़े समय परचात् प्रगतिवादी काव्य बारा सने सने सील होती गई । छायावादी काव्य के बैसे प्रतीको और निराशात्मक तथा बेवतारमक भावों की पुनरावृत्ति से जैसे पाठक उठने लगे वे बैसे ही स्थिति प्रगतिवादी बाप की हुई । शोषितों के प्रति अविष्यक्त कवियों की बौद्धिक सहाय्यपुति का रंभ बहुत दिनों तक स्थाई नहीं रह सका । उसकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई । काव्य में पुनः स्वच्छन्द स्वतंत्र भावों की अविष्यक्त कवियों का व्येव बनी और निरम नये प्रयोग प्रारम्भ हुए ।

प्रयोगवाद् नई कविता (१९४५ से अब तक) —

प्रगतिवाद के साथ ही हिन्दी में एक और नई काव्यपाठ का प्रावुर्जाव हुआ जो 'प्रयोगवाद' के नाम से प्रसिद्ध है । प्रारम्भ में विषय वस्तु की दृष्टि से इस काव्य में कोई विशेष मनीनता नहीं थी, इसके प्रमुख कवि प्रायः बही ने जो प्रगतिवादी रचनाएँ करती थे किन्तु बीती की पराजित मनीनता के कारण इसको पुष्क नाम दिया गया । बाव यं यह बारा स्वतंत्र काव्य के रूप में मानी जाने लगी । सन् १९४५ में

‘मजेम’ जी ने कुछ कवियों की रचनाया में गवीन मौलियों का मध्यकर उनका एक सप्ताह ‘तरसप्तक’ के नाम से प्रकाशित किया। इसकी भूमिका में उन्होंने लिखा कि— “संपूर्ण कवि सभी ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं—जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है केवल घन्टों ही अपने को मानते हैं।” इस कथन में प्रमुख प्रयोग सत्य के प्रयोग से नहीं मेली में रचना करने वाले कवि प्रयोगवादी कहलाये और उनकी रचनाएँ ‘प्रयोगवाद’। इस प्रकार समय प्रयोगवाद के प्रथम प्रारम्भ कर्ता कवि और आलोचक माने जाते हैं। प्रथम ‘सप्तक’ में जिन प्रयोगवादी कवियों की रचनाएँ संग्रहीत हुई उनके नाम हैं, गजानन माधव मुक्तिबोध मैथिल्य जीन भारतभूषण प्रबोधन प्रकाश माधवे डा रामबिलास शर्मा ‘अजय’ और गिरिजाकुमार माधुर। ‘मजेम’ जी के शब्दों में इन कवियों ने “माया को अपर्णा पाकर बिराम मचेती से शंकी और सीधी तिरछी लकीरों से छोटे बड़े टाइप से सीधे या उमटे अक्षरों से भावों और स्थानों के नामों से, प्रचुर वाक्यों से—सभी प्रकार के इतर साधनों से” यह ब्रह्मा की कि ‘अपनी उमारी हुई संवेदना की दृष्टि को पाठकों तक प्रयुक्त पहुँचा सकें।”

कवियों ने इस प्रकार के नये प्रयोग करने क्यों प्रारम्भ किये इस जिज्ञासा का स्पष्टीकरण एवं समाधान करते हुए अमरजी ने भूमिका में लिखा कि ‘बहुत से लोग इस बात को भूल गये हैं कि कवि प्रापुनिक जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रहा है—माया की प्रमदा संभुक्ति जाती हुई सार्वकला की केंद्रम काढ़कर उनमें गया, व्यक्ति व्यापक व्यक्ति सार-गमित एवं चरना जाता है—और अहंकार के कारण नहीं इसलिये कि हमारे भीतर हमारी बहरी मांग स्पष्ट है इसलिये कि वह ‘व्यक्ति काव्य’ को व्यापक सत्य बनाने का सनातन उत्तरदायित्व अब भी निभाहना चाहता है पर देना है कि मायावली

सावा से ही भरकर और जमकर भुख हो गई है। आणु संचार का मार्ग उनमें नहीं है।

एक नये प्रयोगवादी कवि ने शब्दों के पुराने धर्मों को अपने अक्षर में कुसकुमाती हुई नई व्याकुलता और बेरुना की अभिव्यक्ति में असमर्थ पाकर लिखा है -

प्रश्न अभिव्यक्ति का
मित्र ।
किसी मर्मस्पर्शी जन्म से
या क्रिया से
मेरे शब्दों अन्तर्धानों को मेरो
प्रेरणा दो ।

भूक ।
असहाय ।।
अभिव्यक्तिहीन ।।।
मैं जो कवि हूँ
शब्दों अन्तर्धानों के पाटी में पड़ा हुआ
एकाकी बाने-सा
कब तक बीठा रहूँगा ?
कब तक कमरे के बाहर पड़े हुए गर्म ओरे सा
बीकन का यह कम चलेगा ?
कब तक जिवन्ती की नई पीठा रहूँगा
प्रश्न अभिव्यक्ति का है मित्र ।
ऐसा करो कुछ
जो मेरे मन में कुसकुमाता है
बाहर धावाये ।
शक्ति छा जाय ।

अभिध्वस्त के इस प्रश्न में कवियों को नये प्रयोगों के मिय विषय दिया है। उनके 'अर्थ' कविता में। से नयी अभिध्वस्त और नये अर्थ पाने के लिये प्रायत्न करते हैं -

अर्थ नामधारी
 सारे के सारे सुबक, प्रीति की बालक
 एक तुम्हारे इति की कर रहे प्रतीक्षा
 बाहे बिपर मोड़ दो
 कोई उतर नहीं है—
 ऊँची भीची पहाँ में
 या उन वसियों में
 वहाँ कुटी का गुजर नहीं है
 सक्ति मजिज तक पहुँचा दो, ओ कविता माँ !
 किसी अर्थ में बाँध
 विजय का कवच बिम्बादो ओ कविता माँ !
 धूम बूझरित
 हम कि तुम्हारे ही बालक हैं
 हमें निहारो !
 अर्थ बिठाओ,
 अर्थ बिठाओ ओ कविता माँ !

—दुप्यस्त कुमार

कविता माँ के मानो इन प्रयोगधारी कवियों के 'अर्थों' की पुकार सुनकर उन्हें नये अर्थ-रस और नये अर्थों में प्रयोग करने की प्रेरणा दी है। इसीलिये यह काव्यधारा अपनी पूर्ववर्ती काव्यधाराओं से निम्न शक्तियों के नये प्रयोग नये अर्थ नये भाव और नये रस लेकर आई है। इन काव्य में भाषा सीधी की गयी है। ता है ही बिगड़-बिगड़ और बिचार सीधी में भी गयी है और प्रयोगशीलता है। प्रयोगधारी कवियों के दुप्यस्त, अर्थ-रस बिगड़ बिगड़ बिचारना छोड़ दिया

प्रशस्तियों में अन्तर दिखता है किन्तु किसी चाहित्य विधि के प्राथमिक और विकसित रूप में जो अन्तर होता है प्रायः वही अन्तर प्रयोगवाद और नई कविता में है। दोनों में मित्रता कम समानता अधिक है। प्रयोगवादी कवि ही सब नये कवि कहलाते हैं।

नई कविता की कुछ विशेष प्रशस्तियाँ हैं व्यक्तिवाद निराशावाद नया वार्ध प्रतिबीजिता उपमानों की नवीनता यथेष्ट का चित्रण और तीक्ष्ण व्यंग्य-हास्य।

नये युग की सामाजिक आर्थिक, वैज्ञानिक राजनैतिक आर्थिक समस्याओं में मनुष्य की भावना विस्थापनों को बड़ा भूक से बिगड़ कर दिया है। वह हर क्षेत्र में अपने आप को घरोर घलटित पाता है। इसीलिए प्रायः का कवि कविता में बिगड़ित मानव मूर्तियों का चित्रण अधिकता से करता है। बर्मेवीर भारतीय मानते हैं -

हम सब के बामन पर दास हम सब की आत्मा में भूत
हम सबके माये पर धर्म हम सब हाथों में टूटी तलवारों की मूठ।

कवि कुंवर नारायण अपने जीवन को बकस्युह में फँसे अभिमन्यु के रूप में देखते हैं -

मेरे हाथ में टूटा हुआ पहिया-----बदन पर टूटा कबच
छापी देह घट विघट--

मैं बलिदान उस संघर्ष में कटु व्यंग्य हूँ उस ठरक पर
जो विद्रोही के नाम पर हारा गया।

नई उपमानों नई व्यंग्यता और नये प्रयोगों के बिना तो नई कविता बहुवर्धित है। कवियों ने ऐसे-ऐसे प्रयोग किये हैं जिससे साधारणीकरण होता हो या नहीं कवि की सूक्ष्म और कलाकारिक बुद्धि पर हुईरी पड़सक जाती है। नये उपमानों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

- (१) कमरे के सौम्य-सी हैं घाँवों बुझी हुई
 बिगड़े कमबख्त साजबस्तीकर स
 जिनके मुख निरस्य सुने हैं ।
- (२) देलसी नमरे उठ
 कितना बड़ा है मैं
 सापरे का राज
 यह व्यस्तित्व मेरा
 चीन की बीमार
 वह अस्तित्व मेरा है ।
- (३) प्यार का नाम लेते ही
 बिजली का स्टोव सी
 जो एक वम मुझे हो जाती है ।
- (४) दूर सितित पर गहनों की बीमार लड़ी है ।
 जिस पर बढ़कर मूरज का सैतान धोकर
 झंक रहा है ।

(५) पार्सेट के बस्ने सी वह होपहर नवम्बर की
 उरमातों की जाति छम्बो लपों में सी गया कवि अपने नये प्रयोग
 करता है । बड़ी लम्बी बड़ी छोटी पंक्तियों द्वारा बड़ी बिचान सक्तों
 से वह अपने पाव पाठकों तक पहुँचाना चाहता है । सब प्राचीन निरर्थक
 है । नया कवि कहता है :—

जत रही प्राचीनताएँ बीच छाती पर मारण का एक टाल ।
 हम अंधेरे की पुरानी धोड़नी को देखकर
 या रही ऊपर नये युग की किरण

— हरिनारायण ध्यान

नई कविता के पद घोर विपन्न दोनों तर ही बहुत बड़ी बड़ी गम्भीर
 विवेचनाएँ हो रही हैं । आज का आलोचना माहिर इन विवेचनाओं से

भरपूर दियाई देता है। नई कविता का भविष्य क्या है यह तो बतायेगा किन्तु इस में सन्देह नहीं कि प्रयोगवाद या नई कविता सामान्य की पाठ्य सामग्री न होकर एक बर्ग विक्षेप की वस्तु है। इन में व्यक्त भाव प्रायः अस्पष्ट होते हैं। कवि अपनी बुझाई छोट अधिक न करके सरस साहित्य रचना की ओर अधिक रें तो यह काव्य द्वारा अधिक उपयोगी और दीर्घ जीवी हो सकत नई कविता के प्रसिद्ध कवि हैं -

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय मुक्तिबोध प्रभाकर :
 चर्मबीर भारती शकुंतलाशुभ, गिरजाकुमार माधुर नामाशुभ :
 प्रसाद मिश्र कुबेरनाथमण्डल भारतभूषण अग्रवाल केदारनाथ अ
 देवराज डा० रामविलास शर्मा नरेश मेहता विजयनाथमण्डल देव
 दुर्लभकुमार, आदि ।

मरपुर दिखाई देता है। नई कविता का महिम्न क्या है यह तो सबम बतायेगा किन्तु इस में शम्भेह नहीं कि प्रयोगवाद या नई कविता सर्व सामान्य की पाठ्य सामग्री न होकर एक वर्ग विशेष की वस्तु बन गई है। इन में व्यक्त भाव प्रायः व्यपष्ट होती है। कवि अपनी बुद्धि की फिट फिट अधिक न करके सरल साहित्य रचना की ओर अधिक ध्यान दें तो यह काव्य भारत अधिक उपयोगी और दीर्घ जीवी हो सकती है। नई कविता के प्रतिष्ठ कवि हैं —

सन्निधानन्द हीरानन्द वात्स्यायन चन्द्रप मुक्तिबोध प्रभाकर याचके
 भर्मबीर भारती लकुल माधुर, गिरजाकुमार माधुर, भाषानुम मशानी
 प्रसाद निम्न कुबजारायण आर्यभूपण अज्जाल केदारनाथ अज्जाल
 देवराज डा० रामचिसास लार्मा नरेश मेहता विजयनारायण देव साही
 कुप्यंतकुमार, आदि।

